अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 44, अंक : 13, 16-28 फरवरी 2021

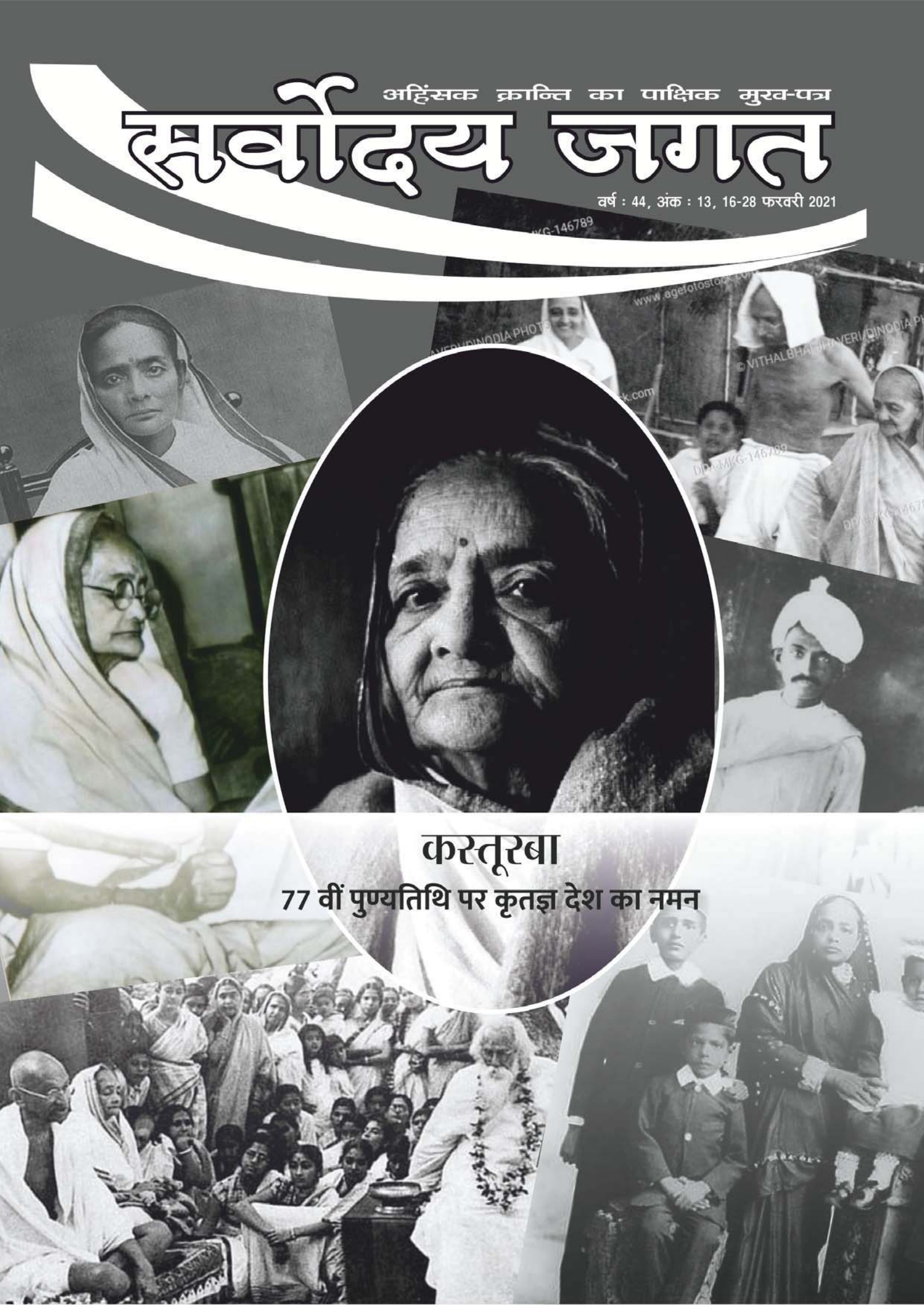

कस्तूरबा

77 वीं पुण्यतिथि पर कृतज्ञ देश का नमन

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 44, अंक : 13, 16-28 फरवरी 2021

अध्यक्ष
चंदन पाल

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **अरविन्द अंजुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. उनकी अनकही कहानी के नायाब... 3
3. हुकूमत को अब गिलहरियों की हलचल... 4
4. चमोली त्रासदी की इंसानी वजहें... 5
5. दुनिया में गिरती हुई देश की छवि... 6
6. आंदोलन जरूरी है, ताकि दिल्ली दूर... 9
7. आदिवासी-जीवन का यही आधार... 11
8. आप बहादुर नहीं हैं, आप कायर हैं, जो... 13
9. गांधीवाद की प्रासंगिकता और... 15
10. आशंकाएं और आकांक्षाएं... 16
11. गतिविधियां एवं समाचार... 19
12. केशव शरण की कविताएं... 20

संपादकीय

सत्ता प्रतिष्ठान का बढ़ता शिकंजा व कमजोर होता लोक

राष्ट्र राज्य (Nation State) के उदय होने के बाद राज्य की सीमा राजा की तलवार से घटना-बढ़ना बंद हो गयी। एक निश्चित भू-भाग में रहने वाले लोगों से राष्ट्र का निर्माण हुआ तथा इस भू-भाग की सीमा में राज्य सीमाबद्ध हो गया। इसीलिए अब राष्ट्र महत्त्वपूर्ण हो गया। राष्ट्र की संप्रभुता का आधार लोक की संप्रभुता बन गयी और लोक की संप्रभुता ही राज्य की संप्रभुता का आधार बनी। लोक की संप्रभुता को व्यक्त करने की प्रणाली की तलाश में ही लोकतंत्र का उदय हुआ। राष्ट्र-राज्य में, राष्ट्र लोक की भागीदारी व लोक की सत्ता से मजबूत होता है; जबकि राज्य की व्यवस्था हिंसा शक्ति, दंड शक्ति, सेना, पुलिस व कानून के माध्यम से चलती है।

पिछले 200 वर्षों में सत्ता की गहराई में एक सत्ता प्रतिष्ठान का निर्माण होता गया है, जिसमें लोक की संप्रभुता व भागीदारी दूर-दूर तक नहीं रहती। यह सत्ता प्रतिष्ठान राज्य सत्ता की शक्ति को मजबूत करने वाला तथा लोक की भागीदारी व लोक की सत्ता को कमजोर करने वाला है। मोटे तौर पर इस सत्ता प्रतिष्ठान में शीर्ष राजनीतिक नेतृत्व, कॉरपोरेट जगत के प्रमुख, सैन्य कमांडर, जासूसी तंत्र के प्रमुख, शीर्षस्थ वैज्ञानिक, नौकरशाह, बैंकर्स व टैक्नोक्रैट्स होते हैं। पर इस बात से समझ सकते हैं कि सन् 1930 के बाद से ही अमेरिका में मिलिट्री (सैन्य) प्रोग्राम के निर्माण में कॉरपोरेट क्षेत्र की प्रमुख भूमिका रही है। एक ओर से कॉरपोरेशन शस्त्र निर्माण व शस्त्र व्यवस्था के लिए कन्ट्रैक्ट पाते रहे हैं, दूसरी ओर सभी अमेरिकन कॉरपोरेशन विश्व भर में अपने निवेश को सुरक्षित बनाये रखने के लिए अमरीकी सेना पर निर्भर करते हैं तथा विश्व भर में अमरीकी सैन्य उपस्थिति व उन पर होने वाले खर्च से भी फायदा उठाते हैं। सैन्य व कॉरपोरेट के सह-संबंध को मजबूत करने में राजसत्ता ने एक नये सत्ता प्रतिष्ठान का निर्माण किया, जिसमें जनता की भागीदारी नगण्य है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया भर में सभी राजसत्ताओं ने इसी मॉडल को विकसित किया। जनता से कहा हुआ एक सत्ता प्रतिष्ठान निर्मित होता रहा। सभी राष्ट्रों में नीतियों के निर्माण के केन्द्र में यह सत्ता प्रतिष्ठान ही होता है। चाहे व्यापार नीति हो, विदेश नीति हो, अर्थ नीति हो, कृषि नीति हो, श्रम नीति हो या अन्य किसी भी क्षेत्र में, नीतियां इसी सत्ता प्रतिष्ठान के घरौंदों में निर्मित होती हैं।

कारपोरेट जगत अपने हितों को बचाने के लिए राष्ट्रवाद का नारा देता है तथा युद्ध का भय खड़ा किये रहता है। इसने एक तरह की सर्व सत्तावादी सत्ताओं को जन्म दिया। सर्व सत्तावादी-अधिनायकवादी सत्ताएं राष्ट्रवाद की चाशनी में दुनिया भर में आती गयीं। ये सत्ताएं, पुरानी दक्षिणपंथी सत्ताओं से भिन्न हैं। ये राष्ट्र के अंदर की विधिधता एवं बहुल संस्कृतियों के सह-अस्तित्व को खत्म करने वाली हैं। एक राष्ट्र-एक भाषा, एक बाजार, एक टैक्स जैसे नारे इन सत्ताओं के अंतर्गत आम हैं। कौन इनके विरोधी हैं, उन्हें चिन्हित कर उन्हें देश-विरोधी घोषित करना इनके नियम हैं। इसमें धर्म व पड़ोसी राष्ट्र से दुश्मनी का मुलम्मा चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है। एक असुरक्षा की संस्कृति विकसित कर, आम जनता को सभी बुनियादी प्रश्नों पर विमर्श से काट दिया जाता है।

इस प्रकार यह सत्ता प्रतिष्ठान देश की नीतियों को इस दिशा में मोड़ता जाता है कि जनता अपने अधिकारों व अपने संसाधनों सहित प्रकृति के संसाधनों से बेदखल होती जाती है, किन्तु विमर्श के मुद्दे कुछ और बने रहते हैं। इस दौर में संसदें, सत्ता प्रतिष्ठान द्वारा निर्मित नीतियों पर मोहर लगाने मात्र का काम करती हैं। लोकतंत्र के लिए बनी व्यवस्थाएं एवं उनके अनुपालन के लिए बने संगठन धीरे-धीरे अपनी स्वायत्तता खोते जा रहे हैं।

ऐसे में जन-आंदोलन ही लोक की भागीदारी बनाने तथा लोकसत्ता के निर्माण का माध्यम बन सकते हैं। वर्तमान किसान आंदोलन इसी कारण है, क्योंकि कृषि से जुड़े तीनों कानून मूलतः सत्ता प्रतिष्ठान द्वारा ही बनाये गये थे। संसद की भूमिका हम सब जानते हैं।

–बिमल कुमार

22 फरवरी : पुण्यतिथि

कस्तूरबा
उनकी अनकही कहानी के नायाब पहलू

❑ संजना रे

इतिहास ने कस्तूरबा गांधी को गांधीजी के जीवन के एक हिस्से के रूप में ही पेश किया है. जहां एक तरफ 'राष्ट्रपिता' को स्वतंत्रता संघर्ष में सबसे आगे रहने के लिए सम्मान दिया जाता है, वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रता के लिए कस्तूरबा के योगदान ने यद्यपि भारतीय इतिहास पर अमिट छाप तो छोड़ी, लेकिन उनके योगदान को बहुत ज्यादा पहचान नहीं मिल पायी.

उन्हें पढ़ना-लिखना नहीं सिखाया गया था लेकिन बेहद कम उम्र में उनसे एक जागरूक फैसला लेने के लिए कहा गया कि वह अपनी जिंदगी को 'पारंपरिक' पारिवारिक जिंदगी के बजाय देश की आजादी की लड़ाई के लिए समर्पित करें. उन्होंने ऐसा किया भी.

वह एक ऐसी नेता थीं, जो लोगों की नजर में नहीं आ सकीं, लेकिन उनकी पहचान उनके पति से बहुत अलग थी. उनके बारे में इतिहास के बिखरे हुए पन्नों पर जो जानकारियां दर्ज हैं, उनसे यह निष्कर्ष निकलता है।

कस्तूरबा, एक युवा और विनम्र महिला

पोरबंदर के एक प्रतिष्ठित और आर्थिक रूप से मजबूत परिवार से आने वाली 13 साल की कस्तूरबा की शादी मोहनदास करमचंद गांधी से 1883 में हुई थी, जैसा कि गांधीजी की आत्मकथा 'द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट्स विद टुथ' में दर्ज है – जो 1927 और 1929 में दो भागों में प्रकाशित हुई थी.

उनकी शादी के शुरुआती साल उनके पारिवारिक बंधनों को दर्शाते थे. गांधी लम्बे समय के लिए अपने काम के चलते बाहर रहते थे, जबकि कस्तूरबा अपने चार बच्चों की देखभाल के लिए घर पर रहती थीं.

उन्हें औपचारिक शिक्षा तो नहीं मिली, लेकिन वह अपने पूरे जीवन में सीखने के लिए लालायित रहीं. जैसा कि अपर्णा बसु ने अपनी किताब 'कस्तूरबा गांधी' में लिखा कि गांधी ने एक बार कस्तूरबा से कहा था कि वह उन्हें तब

तक कोई नोटबुक नहीं देंगे, जब तक कि वह अपनी बच्चों जैसी हैण्डराइटिंग अच्छी नहीं कर लेतीं. अपनी आत्मकथा में गांधी जी उनके लचीलेपन का सम्मान करते हैं और स्वीकार करते हैं कि उन्होंने अक्सर उनकी इच्छाओं को नजरंदाज करते हुए अपनी ही इच्छाओं को बल दिया.

द एक्सपेरिमेंट्स विथ टुथ में गांधी जी ने लिखा है, 'मेरे शुरुआती अनुभव के मुताबिक वह बहुत जिद्दी थीं. मेरे दबाव के बावजूद वह अपनी इच्छा के मुताबिक ही काम करतीं. इसके चलते कभी-कभी लम्बे समय के लिए और कभी-कभी थोड़े-बहुत समय के लिए हमारे बीच मनमुटाव रहा, लेकिन जैसे-जैसे मेरी सार्वजनिक जिंदगी आगे बढ़ी, मेरी पत्नी में बदलाव आया और जानबूझकर उन्होंने खुद को मेरे काम में तल्लीन कर लिया.'

सशक्तिकरण की मिसाल, कस्तूरबा

कस्तूरबा को लम्बे समय तक अकेलेपन का सामना करना पड़ा, क्योंकि गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में राजनीति और न्याय की अपनी लड़ाई में कूद चुके थे। इस अकेलेपन को उन्होंने अपने नेतृत्व कौशल को धारदार बनाने के लिए इस्तेमाल किया. एक तरफ वह अपने आदर्शों में नम्र थीं, वहीं दूसरी तरफ दृढ़ भी थीं. उनके आस-पास के लोग उनके आदेशों को सर आंखों पर रखते थे. जब गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन और भारत छोड़ो आन्दोलन जैसे आंदोलनों की शुरुआत की, तो कस्तूरबा इन आंदोलनों में पहली पंक्ति में थीं. जब-जब गांधी जी जेल में होते थे, तब वह अक्सर इन आंदोलनों में अगुआ की भूमिका में होती थीं.

अपर्णा बसु कहती हैं कि भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान एक बार उन्होंने देश को संबोधित करते हुए एक ताकतवर भाषण भी लिखा था. कस्तूरबा गांधी के शब्द थे - भारत की महिलाओं को अपनी ताकत साबित करनी होगी. जाति या पंथ की परवाह किये बिना उन सबको इस संघर्ष में शामिल होना चाहिए. सत्य और अहिंसा हमारा नारा होना चाहिए.

साबरमती आश्रम को ज्यादातर उन्होंने ही चलाया, 1906 में जब गांधी जी ने 'संयम' की शपथ ली, तब उन्होंने उनके निर्णय का पूरा साथ दिया. उनके आपने आदर्श थे और वह उन पर कायम भी रहीं लेकिन अपनी इच्छा के लिए उन्होंने कभी दूसरों के आदर्शों पर हावी होने की कोशिश नहीं की.

स्वतंत्रता सेनानी कस्तूरबा

सामाजिक न्याय के लिए कस्तूरबा की लड़ाई भारत की आजादी की लड़ाई से बहुत पहले दक्षिण अफ्रीका में ही शुरू हो गयी थी. 1913 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की अमानवीय कार्य स्थिति के खिलाफ प्रदर्शन किया, जिसके लिए उन्हें तीन महीने की जेल भी हुई.

असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उनकी सक्रिय उपस्थिति थी और अपनी उम्र को नजरंदाज करते हुए वह लोगों को कोलोनियल मास्टर्स के खिलाफ अहिंसक आन्दोलन में ले गयीं.

वह खादी का चेहरा बनीं और अपने देश के लिए उत्पादन हेतु स्वदेशी श्रमिकों को प्रेरणा देने में सफल रहीं. भारत छोड़ो आन्दोलन में अपनी भूमिका के दौरान वह आखिरी बार जेल गयी थीं.

पुलिस द्वारा बुरे बरताव और आन्दोलन में उनके शरीर पर पड़े तनाव के चलते, भारत के स्वतंत्र राष्ट्र बनने से तीन साल पहले कस्तूरबा ने 22 फरवरी 1944 को इस दुनिया को अलविदा कह दिया, लेकिन हम उन्हें कभी भूल नहीं पाएंगे. ❑

हुकूमत को अब गिलहरियों की हलचल से भी ख़तरा!

❑ श्रवण गर्ग

हुकूमतों को अगर गिलहरियों की हलचल **से भी ख़**तरा महसूस होने लगे तो समझ लिया जाना जाना चाहिए कि हालात कुछ ज्यादा ही गम्भीर हैं और नागरिकों को अपनी सुरक्षा को लेकर चिंतित हो जाना चाहिए। 'जलवायु परिवर्तन' के क्षेत्र से जुड़ी इक्कीस साल की युवा कार्यकर्ता दिशा रवि को तेरह फ़रवरी से पहले तक कोई नहीं जानता था, उनके मूल राज्य कर्नाटक में भी गिने-चुने लोग ही जानते होंगे। 'किसान आंदोलन' से जुड़ी कोई 'टूलकिट' अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जलवायु नेत्री ग्रेटा थनबर्ग के साथ साझा करने और उसे सम्पादित करने के आरोप में दिशा को दिल्ली पुलिस के साइबर प्रकोष्ठ ने बंगलुरू से हिरासत में ले लिया था। दिशा के दो और युवा साथी—निकिता जैकब और इंजीनियर शान्तनु मुलुक—भी इस प्रकरण में आरोपित हैं।

इस विश्लेषण को दिशा अथवा उनके साथियों तक इसलिए सीमित नहीं रखा जाना चाहिए कि हो सकता है, मौजूदा प्रकरण में देश-विदेश के और भी नाम जुड़ते जाएं और नई गिरफ्तारियाँ भी हों। इस तरह के प्रकरणों में चर्चा अक्सर नए घटनाक्रम और व्यक्तियों पर सिमट जाती है और जो लोग सत्ता-विरोध अथवा अन्य कारणों से पहले से जेलों में डाल दिये गए हैं, उनके चेहरे नागरिक स्मृतियों से गुम होने लगते हैं। हमें इस समय इस बात का ठीक से अनुमान भी नहीं होगा कि कितने नागरिक अथवा 'कार्यकर्ता' किन-किन आरोपों के तहत कहाँ-कहाँ बंद हैं और उनकी मौजूदा शारीरिक-मानसिक दशा कैसी है। अतः हम यहाँ चर्चा दिशा को संदर्भ बनाकर एक व्यापक विषय पर केंद्रित करना चाहते हैं!

नागरिक स्तर पर ऐसी किसी आपसी बातचीत या अफ़वाह से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अलग-अलग कारणों के चलते व्यवस्था या सरकार के प्रति नाराज़गी रखने वाले वर्गों और समुदायों का दायरा बढ़ता ही जा रहा है। और यह भी कि ऐसे सभी लोग राष्ट्र-विरोधी अथवा देश-विरोधी गतिविधियों में संलग्न नहीं करार दिए जा सकते। सरकार को भी पता होगा ही कि मुखर विरोध व्यक्त करने का साहस दिखाने वाले लोगों के अलावा भी ऐसे नागरिकों की तादाद कहीं अधिक होगी जो सड़क के दोनों तरफ़ भीड़ के बीच खड़े तो हैं पर वे न तो अपने हाथ ऊँचे करके अभिवादन कर रहे हैं और न ही मुस्कुरा रहे हैं।

अल्पसंख्यक मुसलमान, दलित, प्रवासी मज़दूर, किसान, छोटे व्यापारी, आढ़तिये, 'आंदोलनजीवी', 'बुद्धिजीवी', बेरोज़गार, आदि तो पहले से ही गिनती में थे। पूछा जा सकता है कि जिस 'युवा मन' की आँखों में 'डिजिटल इंडिया' के सपने काजल की तरह रोपे गए थे, वे भी क्यों 'नाराजों' की भीड़ में शामिल होने दिए जा रहे हैं? जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ यूनिवर्सिटी, जामिया मिलिया, जाधवपुर यूनिवर्सिटी, शांति निकेतन, बीएचयू आदि-क्या ये सारे कैम्पस अब उन युवाओं को तैयार नहीं कर रहे हैं, जिनकी देश को सम्पन्न बनाने के लिए ज़रूरत है? अगर ऐसा ही है तो वे तमाम प्रतिभाशाली भारतीय कहाँ से निकले होंगे, जो इस समय दुनिया भर के मुल्कों में उच्च पदों पर आसीन होकर नाम भी कमा रहे हैं और हमारा विदेशी मुद्रा का भंडार भी बढ़ा रहे हैं? क्या अचानक ही कुछ हो गया है कि राष्ट्रभक्तों का उत्पादन करने वाले शैक्षणिक संयंत्र देशद्रोही उगलने लगे हैं? (ताज़ा संदर्भों में प्रधानमंत्री का यह कथन महत्वपूर्ण है कि दुनिया में जो लोग आतंक और हिंसा फैला रहे हैं, उनमें भी कई अत्यधिक कुशल, काफ़ी प्रबुद्ध और उच्च-स्तरीय शिक्षा प्राप्त लोग हैं। दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं, जो कोरोना महामारी से मुक्ति दिलाने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा देते हैं, प्रयोगशालाओं में जुटे रहते हैं।)

छह जनवरी को अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में ट्रम्प-समर्थकों ने कैपिटल हिल पर जिस समय हिंसक हमला किया था, उस समय उपराष्ट्रपति पेंस की उपस्थिति में चुनाव परिणामों की पुष्टि के लिए सीनेट की बैठक चल रही थी। हमला इतना हिंसक और आक्रोश भरा था कि पेंस सहित सभी सीनेटरों को जान बचाने के लिए सुरक्षित स्थानों पर शरण लेनी पड़ी थी। भारतीय भक्तों के लिए यह शोध का विषय हो सकता है कि अमेरिका के संसदीय इतिहास की इस सबसे शर्मनाक घटना के बाद कितने लोगों के खिलाफ़ देशद्रोह या राजद्रोह के मुक़दमे दायर किए गए हैं और हज़ारों हमलावरों में से कितने लोगों की अब तक गिरफ्तारियां हो चुकी हैं।

एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में अगर नागरिकों के शांतिपूर्ण तरीक़े से विरोध व्यक्त करने के अधिकार छीन लिए जाएंगे तो फिर साम्यवादी/तानाशाही देशों और हमारे बीच फ़र्क की सारी सीमाएं समाप्त हो जाएंगी। एक प्रजातंत्र में नागरिक आंदोलनों से निपटने की सरकारी 'टूलकिट' भी प्रजातांत्रिक ही होनी चाहिए। ट्विटर, फ़ेसबुक आदि लोकप्रिय सोशल मीडिया प्लेटफ़ार्म्स पर इस समय जो नकेलें कसी जा रही हैं, उन्हें भी नागरिक आज़ादी पर बढ़ते जा रहे प्रतिबंधों के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाना चाहिए। यह मुद्दा अलग से चिंता का विषय हो सकता है कि आर्थिक विकास के आक्रामक प्रयासों के साथ-साथ प्रजातांत्रिक मूल्यों के ह्रास के जिस प्रयोग को अंजाम दिया जा रहा है, वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हमारी इज्जत बढ़ा रहा है या नैतिक रूप से हमें कमजोर कर रहा है! निजीकरण केवल सार्वजनिक उपक्रमों का ही किया जा सकता है, सार्वजनिक प्रतिरोधों, संवेदनाओं और व्यथाओं का नहीं।

दिशा रवि पर आरोप है कि 'टूलकिट' को ग्रेटा थनबर्ग के साथ साझा करने के पीछे उसका मक़सद किसान आंदोलन को विश्व स्तर पर खड़ा करके देश का माहौल बिगाड़ना था। सवाल यह है कि क्या दिशा या उनके कुछ साथियों की गिरफ्तारी के बाद आंदोलन का सर्वव्यापी होना रुक जाएगा? अगर सरकार ऐसा मानकर चल रही है तो उसे अपने सारे सलाहकारों को बदल देना चाहिए। हक़ीक़त यह है कि दुनिया की कोई भी ताक़त अभी तक कोई ऐसा 'टूलकिट' नहीं बना पाई है, जो निहत्थे नागरिकों के अहिंसक प्रतिकार को विश्वव्यापी होने से रोक सके। सर्वशक्तिमान अंग्रेज भी गांधी के खिलाफ़ ऐसा नहीं कर पाए थे। किसान आंदोलन की आवाज़ को अहिंसक तरीक़े से दुनिया के कानों तक पहुँचाने का दिशा रवि का प्रयास अगर देश के खिलाफ़ युद्ध छेड़ने की श्रेणी में आता है तो उन्हें सजा मिलनी ही चाहिए। ❑

चमोली त्रासदी की इंसानी वजहें

❑ हिमांशु ठक्कर

उत्तराखंड में पिछले दिनों जो आपदा आयी, ऐसी आपदा 2012 और 2014 में भी आयी थी। वर्ष 2013 की तबाही तो बहुत बड़ी थी। यहां लगातार इस तरह की आपदाएं आती रहती हैं। भूकंप, भारी बारिश के कारण बाढ़, बादल का फटना आदि यहां के लिए कोई नई बात नहीं है। वर्ष 2019 में एक ही मानसून में उत्तराखंड में 23 जगहों पर बादल फटने की घटनाएं हुई थीं। असल में यह क्षेत्र पर्यावरण की दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील है।

हाल की चमोली जिले की आपदा को देखें तो इसकी कुछ वजहें उजागर होती हैं। इनमें पहली है, उत्तराखंड बहुत ही भूकंप प्रवण क्षेत्र है, जहां बहुत सी टेक्टोनिक्स फाल्ट माइंस हैं। उनकी वजह से यहां लगातार भूकंपीय हलचलें होती रहती हैं और बड़ा भूकंप आने का खतरा बना रहता है। इस कारण भूस्खलन की आशंका भी बनी रहती है। यह बहुत ऊंचाई वाला क्षेत्र है, जहां काफी ग्लेशियर हैं और ग्लेशियर क्षेत्रों में भी लगातार भूकंप आते रहते हैं। नतीजे में यहां पर हिमस्खलन की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। साथ ही जहां ग्लेशियर झीलें हैं, वहां भी इन झीलों के टूटने की आशंका बढ़ जाती है। यहां बर्फबारी भी बहुत ज्यादा होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण ग्लेशियर पिघलकर छोटे होते जा रहे हैं और इसकी वजह से जो ग्लेशियर झीलें बनती हैं, उनके टूटने से ग्लेशियर लेक आउटबर्स्ट से पैदा हुई बाढ़ आने की आशंका बनी रहती है।

दूसरी वजह है, उच्च पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण यहां हिमस्खलन भी होता रहता है और अत्यधिक बारिश के कारण बाढ़ आने की आशंका भी बनी रहती है। जो पानी बरसता है, वह कई जगहों पर बहुत जल्दी नदी में उतर आता है। इसका कारण वनों की कटाई है। इस क्षेत्र में पहले जहां भी प्राकृतिक जंगल थे, वहां बारिश आने पर पानी को अवशोषित करने की क्षमता थी। जहां पर प्राकृतिक जंगल खत्म हो गये, उन जगहों पर बारिश के पानी को अवशोषित करने की क्षमता कम हो गयी है। इनमें जलवायु परिवर्तन के जुड़ जाने से बर्फबारी, बारिश आदि में भी परिवर्तन आ रहा है। परिणामस्वरूप यहां आपदा आने की आशंका में वृद्धि हुई है।

त्रासदी का तीसरा कारण है, विकास कार्यों के नाम पर क्षेत्र में होने वाली दखलंदाजी, जैसे हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट्स, सड़कें, टनल, ब्लास्टिंग, माइनिंग आदि। ऐसी गतिविधियां आपदा आने की आशंका कई गुना बढ़ा दे रही हैं। दिक्कत है कि इन परियोजनाओं को शुरू करने के पहले इस इलाके का जिस तरह से अध्ययन होना चाहिए, नहीं होता है। इन परियोजनाओं का इस क्षेत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह ठीक तरह से पता ही नहीं होता। कायदे से इस क्षेत्र के अध्ययन के बाद एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत निर्णय होना चाहिए कि फलां परियोजना इस क्षेत्र के अनुकूल है या नहीं। इस तरह की परियोजनाएं हादसे को इसलिए न्यौता देती हैं कि इन्हें बनाने के लिए वनों की कटाई होती है, नदी में जैव विविधता खत्म हो जाती है और ढलान में भूस्खलन की आशंका बढ़ जाती है।

चौथा कारण है, हाइड्रोपावर जैसी परियोजनाएं, सड़कें, रेलवे लाइन आदि बनाने में होने वाला नियमों का उल्लंघन। रेणी गांव, जहां से इस हादसे की शुरुआत हुई, वहां ऋषिगंगा हाइड्रोपावर बनाने के लिए ब्लास्टिंग, हो रही थी और गांव के लोगों ने इस परियोजना का विरोध किया था। इसे लेकर उच्च न्यायालय में याचिका भी लगाई गई थी, लेकिन इसके बावजूद यह परियोजना शुरू हुई और नतीजे में आपदा क्षमता में कई गुना की वृद्धि हो गयी। इन परियोजनाओं को बनाने और पूरा करने के क्रम में लाखों क्यूबिक टन कीचड़ पैदा होता है, जो सीधा नदी में फेंक दिया जाता है। यह नियमों का स्पष्ट तौर पर उल्लंघन है।

यह जानते हुए कि उत्तराखंड बेहद संवेदनशील क्षेत्र है, ऐसी परियोजनाओं को बनाते समय नियमानुसार सभी प्रक्रियाएं पूरी होनी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता। उत्तराखंड के डिजास्टर मैनेजमेंट एंड मॉनिटरिंग सेंटर ने 2012 में ही सुझाव दिया था कि पूरे उत्तराखंड में विकास कार्यों के लिए कहीं भी विस्फोटक का उपयोग नहीं होना चाहिए, लेकिन इस सुझाव को अनसुना कर दिया गया। इस प्रकार विकास कार्यों के नाम पर यहां नियमों का खुलेआम उल्लंघन होता है।

पांचवां कारण, जब हमें पता है कि उत्तराखंड आपदाप्रवण क्षेत्र है, यहां विकास कार्यों से आपदा की आशंका बढ़ जाती है तो आपदा प्रबंधन तंत्र मजबूत होना चाहिए। जब भी कोई आपदा आती है या आने की आशंका बनती है, तो उत्तराखंड में उस आपदा के प्रबंधन के तरीके, सूचनाएं, मॉनिटरिंग, मेजरमेंट आदि नहीं हो पाता। इन तैयारियों से आपदा प्रबंधन क्षमता बढ़ जाती है। सच तो यह है कि इस तरह की आपदा की चेतावनी पूर्व में ही जारी करनी चाहिए। सेटेलाइट, डॉप्लर राडार आदि से इसकी निगरानी होनी चाहिए। एक बार रेणी गांव में जब बाढ़ आयी, तो तंत्र के पास ऐसी तकनीक होनी चाहिए थी, जिससे खतरनाक इलाकों में तत्काल सूचना पहुंचाई जा सके और नतीजे में तत्काल उपयुक्त कार्रवाई की जा सके।

यदि सूचना सही समय पर तपोवन में पहुंच जाती तो शायद वहां टनल से तुरंत लोगों को निकाला जा सकता था, लेकिन हमारे पास आपदा से जुड़े इस तरह के सूचना तंत्र भी नहीं हैं। यहां न ही आपदा की निगरानी होती है, न ही इसके प्रबंधन के लिए कोई तंत्र है। इन सबकी वजह से आपदा में जो निहित क्षमता है, वह बहुत बढ़ जाती है और हादसा बहुत बड़ा हो जाता है। विकास कार्यों के नाम पर होने वाली गतिविधियों की शुरुआत के पहले ही इन गतिविधियों का इस क्षेत्र पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसका अध्ययन किया जाना चाहिए। आपदा निगरानी और इसके प्रबंधन को लेकर एक सशक्त तंत्र बने, जो सही समय पर सही सूचनाएं दे सके।

चार धाम हाइवे या निर्माणाधीन हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट्स को अभी रोक देना चाहिए और सभी प्रोजेक्ट्स की स्वतंत्र समीक्षा करनी चाहिए। स्वतंत्र वैज्ञानिकों की एक टीम गठित की जानी चाहिए, जो अध्ययन करे कि इन प्रोजेक्ट्स को आगे बढ़ाना चाहिए या नहीं। इस टीम में समाजशास्त्री भी हो सकते हैं और स्थानीय लोग भी। स्वतंत्र समीक्षा के जरिए यह अध्ययन करने की जरूरत है कि इस तरीके के हादसों से हम क्या सीखें।

इस बीच क्षत-विक्षत जल विद्युत परियोजनाओं को रद्द कर देना चाहिए। यह प्रधानमंत्री कार्यालय की फरवरी 2019 में वहां के तत्कालीन प्रमुख सचिव नृपेन मिश्रा की अगुआई में हुई उस बैठक के निर्णयों के अनुकूल होगा, जिसमें उत्तराखंड में कोई नई जल विद्युत परियोजना नहीं बनाने का तय हुआ था। असल में हमें, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र की ताजा रिपोर्ट में कहा गया है, भविष्य में उम्रदराज, असुरक्षित और अनुपयुक्त जल विद्युत परियोजनाओं को खत्म करने के बारे में सोचना होगा। *-सप्रेस*

स्वतंत्रता सूचकांक

दुनिया में गिरती हुई देश की छवि चिन्ताजनक है

❑ विजय शंकर सिंह

दुनिया में जब भी उदार परंपराओं, विरासतों, संस्कृतियों और समाजों की चर्चा होती है तो भारत का नाम सबसे पहले लिया जाता है। पाश्चात्य संसार ने भले ही 1789 की फ्रेंच क्रांति के बाद स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के नारे को पहली बार धरती पर उतरते हुए देखा हो, पर भारतीय वांग्मय में ऋग्वेद से लेकर विवेकानंद तक इन तीनों महान मूल्यों की बात न केवल की गयी है बल्कि उन्हें भारतीय दर्शन और संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में बताया गया है। स्वाधीनता संग्राम में भी तमाम धार्मिक मतवाद और जातिवाद के पंक के बावजूद आज़ादी की लड़ाई की मुख्य धारा लोकतंत्र पर ही टिकी रही। आज भी भारत का सम्मान दुनिया में उसकी लोकतांत्रिक उदारवाद की विरासत के कारण है। पर पिछले कुछ सालों में देश की अंतरराष्ट्रीय छवि को नुकसान पहुंचा है। दुनिया भर में लोकतंत्र पर समय समय पर सत्ता की हठधर्मिता, अहंकार और जिद के कारण खतरे आते रहे हैं और यह खतरे अब भी विभिन्न देशों में उभरते रहते हैं। लेकिन अंततः आतंक और तानाशाही के इन खंडहरों पर लोकतंत्र की कोंपल खिलती है और अतीत में पड़ा हुआ यह सब दंश हमें अब भी सचेत करता है कि हम उस भयानक रास्ते पर देश और समाज को न जाने दें।

आज भारत में लोकतंत्र की स्थिति के बारे में दुनिया की राय थोड़ी बदली हुई है। लोकतांत्रिक परंपराओं में अपना अहम स्थान रखने के बाद एक शोध संस्थान ने हमें इलेक्टेड डेमोक्रेसी के बजाय इलेक्टेड ऑटोक्रेसी के खाने में रख दिया है। यानी हम एक चुनी हुई तानाशाही की ओर बढ़ रहे हैं। दुनिया भर में आज़ादी और लोकतंत्र के स्वास्थ्य पर सर्वे करने वाली अंतरराष्ट्रीय संस्था 'फ्रीडम इन द वर्ल्ड' ने हाल ही में एक सर्वे किया है, जिसमें भारत को लोकतंत्र के पैमाने पर गिरता हुआ बताया है। इस संस्था की सालाना रिपोर्ट में दुनिया भर के देशों में राजनीतिक और नागरिक स्वतंत्रता की स्थिति और कुछ चुनिंदा जगहों की मानवीय और राजनीतिक स्वतंत्रता को कई मानकों के आधार पर परखा जाता है। सभी मानकों के आधार पर इस रिपोर्ट में देशों को स्कोर दिया जाता है। रिपोर्ट में 195 देशों और 15 इलाकों में 1 जनवरी 2020 से लेकर 31 दिसंबर 2020 तक हुए घटनाक्रमों का विश्लेषण किया गया है।

फ्रीडम हाउस ने अपनी वर्ष 2021 की रिपोर्ट में भारत का दर्जा पिछले साल के 'फ्री' यानी 'स्वतंत्र' से 'पार्टली फ्री' यानी 'आंशिक रूप से स्वतंत्र' कर दिया गया है। इंटरनेट फ्रीडम स्कोर के आधार पर भी भारत को 'आंशिक रूप से स्वतंत्र' देश का दर्जा दिया गया है। लोकतंत्र के स्तर में गिरावट केवल भारत में ही नहीं है। रिपोर्ट के अनुसार 'दुनिया की लगभग 75 प्रतिशत आबादी ऐसे देशों में निवास करती है, जहाँ पिछले कुछ वर्षों में लोकतंत्र और स्वतंत्रता की स्थिति में गिरावट आई है।' यह आकलन पिछले 15 वर्षों का है और इसके अनुसार दुनिया के सबसे मुक्त और स्वतंत्र देशों में फिनलैंड, नार्वे और स्वीडन शामिल हैं, वहीं सबसे नीचे तिब्बत और सीरिया हैं। वर्ष 1941 से कार्यरत इस संस्था का वित्तपोषण अमेरिकी सरकार के अनुदान से किया जाता है।

यह रिपोर्ट मुख्य तौर पर राजनीतिक अधिकारों और नागरिक स्वतंत्रताओं पर आधारित है। राजनीतिक अधिकारों के तहत चुनावी प्रक्रिया, राजनीतिक बहुलवाद और भागीदारी तथा सरकारी कामकाज जैसे संकेतक शामिल हैं। जबकि नागरिक स्वतंत्रता के तहत अभिव्यक्ति एवं विश्वास की स्वतंत्रता, संगठनात्मक अधिकार, कानून के शासन, व्यक्तिगत स्वायत्तता व व्यक्तिगत अधिकारों आदि संकेतकों को शामिल किया गया है। इन्हीं संकेतकों के आधार पर देशों को 'स्वतंत्र', 'आंशिक रूप से स्वतंत्र' या 'स्वतंत्र नहीं' घोषित किया जाता है।

भारत को रिपोर्ट में 67/100 स्कोर प्राप्त हुआ है, जो बीते वर्ष के 71/100 के मुकाबले कम है, पिछले वर्ष भारत 'स्वतंत्र' श्रेणी में शामिल था, जबकि इस वर्ष भारत की स्थिति में गिरावट को देखते हुए इसे 'आंशिक रूप से स्वतंत्र' श्रेणी में शामिल किया गया है। अंग्रेजी दैनिक द हिंदू के अनुसार, इस गिरावट के कारणों को स्पष्ट करते हुए रिपोर्ट में कहा गया है कि—

* प्रेस की स्वतंत्रता पर हमलों में नाटकीय रूप से वृद्धि दर्ज की गई है।मोदी सरकार के तहत हालिया वर्षों में प्रेस की आज़ादी पर हमले नाटकीय रूप से बढ़े हैं। मीडिया में विरोधी स्वरों को दबाने के लिए अधिकारियों ने सुरक्षा, मानहानि, देशद्रोह, हेट स्पीच और अदालत की अवमानना के क़ानूनों का इस्तेमाल किया है। राजनेताओं, कारोबारियों, लॉबीईस्ट्स, प्रमुख मीडिया शख्सियतों और मीडिया आउटलेट्स के मालिकों के बीच के गठजोड़ के खुलासे ने लोगों के प्रेस पर भरोसे को कम किया है।

* देशद्रोह के क़ानूनों के दुरुपयोग का जिक्र करते हुए कहा गया है कि सरकार की आलोचना करने वाले पत्रकारों, छात्रों और आम नागरिकों को इन क़ानूनों के जरिये निशाना बनाया गया है।

* भारत एक वैश्विक लोकतांत्रिक नेता के रूप में अपनी पहचान खोता जा रहा है और समावेशी एवं सभी के लिए समान अधिकारों जैसे बुनियादी मूल्यों की कीमत पर संकीर्ण हिंदू राष्ट्रवादी हितों में उभार देखा जा रहा है।

* इंटरनेट स्वतंत्रता पर रिपोर्ट का कहना है कि कश्मीर और दिल्ली की सीमा पर इंटरनेट शटडाउन के कारण इंटरनेट स्वतंत्रता में भारत का सूचकांक गिरकर 51 पर पहुँच गया है और इसमें भी भारत को 'आंशिक रूप से स्वतंत्र' का दर्जा दिया गया है।

* कोरोना महामारी के विरुद्ध प्रतिक्रिया के दौरान भारत समेत वैश्विक स्तर पर कई स्थानों पर लॉकडाउन जैसे उपाय अपनाए गए, जिसके कारण भारत में व्यापक स्तर पर लाखों प्रवासी श्रमिकों को अनियोजित और खतरनाक तरीके से आंतरिक विस्थापन करना पड़ा।

* भारत में महामारी के दौरान एक विशेष समुदाय के लोगों को वायरस के प्रसार के लिए अनुचित तरीके से दोषी ठहराया गया और कई बार उन्हें अनियंत्रित भीड़ के हमलों का सामना भी करना पड़ा था।

* कश्मीर पर जारी एक अलग रिपोर्ट में कश्मीर का दर्जा पिछले साल के समान 'स्वतंत्र नहीं' रखा गया है. पिछले साल यह स्कोर 28 था जो अब घटकर 27 रह गया है। इस साल की रिपोर्ट में कश्मीर में राजनीतिक अधिकारों को 40 में से 7 नंबर दिए गए हैं, जबकि नागरिक अधिकारों को 60 में से 20 अंक मिले हैं।

* सरकार द्वारा भेदभावपूर्ण नागरिकता कानून के विरोध में प्रदर्शन कर रहे लोगों पर अनुचित कार्यवाही की गई और इस प्रदर्शन के विरुद्ध बोलने वाले दर्जनों पत्रकारों को गिरफ्तार कर लिया गया। रिपोर्ट में, नागरिकता क़ानून (सीएए) में हुए बदलावों को भेदभाव वाला बताया गया है और कहा गया है कि पिछले साल फ़रवरी में इस क़ानून के चलते हुए विरोध-प्रदर्शनों में हिंसा हुई. इसमें 50 से ज्यादा लोग मारे गए, जिनमें से ज्यादातर मुसलमान थे।

* उत्तर प्रदेश में अंतरधार्मिक विवाह के माध्यम से ज़बरन धर्म परिवर्तन पर रोक लगाने से संबंधित कानून को भी स्वतंत्रता पर एक गंभीर खतरे के रूप में सूचीबद्ध किया गया है।

* फ्रीडम हाउस ने लोगों को अपनी धार्मिक आस्था को व्यक्त करने में मिलने वाली आज़ादी के आधार पर भारत को 4 में से 2 नंबर दिए हैं। रिपोर्ट के अनुसार हालांकि, भारत आधिकारिक तौर पर सेक्युलर राज्य है, लेकिन हिंदू राष्ट्रवादी संगठन और कुछ मीडिया आटलेट्स मुस्लिम-विरोधी विचारों को प्रमोट करते हैं. रिपोर्ट में कहा गया है कि इस गतिविधि को बढ़ावा देने का आरोप सरकार पर भी लगता है।

* रिपोर्ट में राजनीतिक अधिकारों के लिए 40 अंकों में से भारत को 34 नंबर दिए गए हैं. जबकि नागरिक अधिकारों में 60 अंकों में से भारत को 33 नंबर ही मिले हैं। पिछले साल भारत का स्कोर 70 था और इसका दर्जा फ्री यानी स्वतंत्र का था।

हालांकि, मानवाधिकार कार्यकर्ता कहते हैं कि फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट ऐसी पहली रिपोर्ट नहीं है, जिसमें भारत की रैंकिंग नीचे आई है. वे कहते हैं कि पिछले कुछ साल से लगातार अलग-अलग रिपोर्ट्स में भारत की रैंकिंग में गिरावट आ रही है। मानवाधिकार कार्यकर्ता आकार पटेल कहते हैं कि 'पिछले 5-6 साल से लगातार कई इंडेक्स में भारत की रेटिंग गिर रही है. चाहे वर्ल्ड बैंक की दो इंडेक्स, वर्ल्ड इकनॉमिक फोरम की 2-3 इंडेक्स, इकनॉमिस्ट इंटेलिजेंस यूनिट, ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल समेत 40 ऐसे इंडेक्स हैं, जहां पर 2014 से भारत की रेटिंग नीचे आई है। यह गवर्नेंस का मसला है। 2014 के पहले भारत में जैसी गवर्नेंस थी, वैसी अब नहीं है। देशद्रोह के मसले पर सुप्रीम कोर्ट कई दफ़ा कह चुका है कि जब तक किसी स्पीच में हिंसा भड़काने की बात न की जाए, उसे देशद्रोह नहीं माना जा सकता। लेकिन सरकारें और पुलिस इस पर अमल नहीं करती हैं। पिछले पाँच साल में देशद्रोह के केस बढ़े हैं। वर्षों तक केस चलते हैं और उसके बाद लोगों को छोड़ दिया जाता है। यह सरकारी पैसे और वक्त की बर्बादी है।'

प्रेस की आज़ादी के मसले पर पटेल कहते हैं कि नए आईटी ऐक्ट में सरकारी अफ़सरों को मीडिया को क़ाबू करने की ताक़त दे दी गई है. दूसरा, भारत में सरकार और सरकारी कंपनियों का मीडिया को विज्ञापन देने का ख़र्च इतना बड़ा है कि मीडिया सरकारी दबाव में रहता है. भारत में मीडिया को स्वतंत्र कहना बहुत मुश्किल है.

भारत सरकार ने भी फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। विदेशमंत्री एस. जयशंकर ने फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट पर अपनी प्रतिक्रिया में भारत में गिरते लोकतंत्र की टिप्पणी पर प्रतिवाद करते हुए कहा है कि वे हमें हिन्दू राष्ट्रवादी पार्टी कहते हैं।हाँ,हम हैं राष्ट्रवादी पार्टी, हमने 70 देशों को कोविड वैक्सीन दी है और जो ख़ुद को अंतरराष्ट्रीयवाद के पैरोकार बताते हैं,उन्होंने कितने देशों को वैक्सीन पहुँचाई हैं? वे बताएं ज़रा कितने हैं, जिन्होंने कहा कि कोविड वैक्सीन की जितनी ज़रूरत हमारे लोगों को है,उतनी ही ज़रूरत बाकी देशों को भी है।तब ये कहाँ चले जाते हैं? हमारी भी आस्थाएं हैं,मान्यताएं हैं,हमारे मूल्य हैं, लेकिन हम अपने हाथ में धार्मिक पुस्तक लेकर पद की शपथ नहीं लेते।सोचिए ऐसा किस देश में होता है?इसलिए मेरा मानना है कि इन मामलों में हमें ख़ुद को आश्वस्त करने की ज़रूरत है। हमें देश में लोकतंत्र की स्थिति पर किसी के सर्टिफिकेट की ज़रूरत नहीं है, ख़ासतौर पर उन लोगों से तो बिल्कुल भी नहीं,जिनका स्पष्ट रूप से एक एजेंडा है।

फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट का हमारी सरकार ने प्रतिवाद किया है और अपना पक्ष रखते हुए अपने मूल्यों के साथ जुड़े रहने की बात की है, साथ ही इसे निजी मामलों में हस्तक्षेप भी बताया है। विदेश मंत्री के बयान पर कोई ऐतराज नहीं है, पर एक साल के भीतर फ्रीडम इंडेक्स जिन सूचकांकों के आधार पर गिरा है, उन कारकों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। ऐसा भी नहीं कि हमने दुनिया की परवाह करना छोड़ दिया है या आज के विश्व में दुनिया की राय को दरकिनार कर के चलने का हमने मन बना लिया है। फ्रीडम हाउस की राय, आकलन और सूचकांक महत्वपूर्ण हो या न हो, पर वे कारक अवश्य महत्वपूर्ण हैं, जिनके आधार पर फ्रीडम हाउस उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचा।

पिछले एक साल में हमारी छवि में गिरावट के कुछ कारण हैं, दिल्ली दंगे में पुलिस की भूमिका, एक मंत्री और एक भाजपा नेता के हिंसा भड़काने वाले बयान पर दिल्ली पुलिस की शर्मनाक चुप्पी, लॉकडाउन के समय हज़ारों मज़दूरों का यातनामय विस्थापन, अहिंसक और शांतिपूर्ण किसान आंदोलन को तोड़ने के लिए की गयी कार्यवाहियां, जिसमें इंटरनेट बंद करने से लेकर सड़कों पर कील गाड़ने की घटनायें भी शामिल हैं। इन सब गतिविधियों को दुनिया ने देखा है और दुनिया भर में सभी बड़े अखबार, चाहे वे ब्रिटेन के हों या अमेरिका के, ने न केवल इनसे जुड़ी खबरों को छापा है, बल्कि अपने अपने अखबारों में सम्पादकीय भी लिखे हैं। आज के संचार और इमेज बिल्डिंग के युग में जब बड़ी बड़ी पीआर एजेंसियां छवि सुधारने के लिए भाड़े पर लगाई जाती हैं, तो यह कह देना कि हम इन खबरों, और अखबारों की राय की परवाह ही नही करते, खुद से ही मुंह छिपाना होगा। फ्रीडम हाउस के आकलन पर आपत्ति दर्ज कराने के साथ फ्रीडम हाउस ने जिन आंकड़ों के आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले हैं, उन आंकड़ों के तथ्यों को भी सरकार को चाहिए कि सबके सामने रखे, ताकि फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट को एक्सपोज़ किया जा सके।

फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट आने के पहले, किसान आंदोलन के सन्दर्भ में सबसे पहले कनाडा ने आपत्ति जताई थी। इसका एक कारण कनाडा में पंजाबी समुदाय का प्रभाव हो सकता है। इस आपत्ति पर भारत ने कनाडा के उच्चायुक्त को तलब कर उनसे कहा कि 'किसानों के आंदोलन के संबंध में कनाडाई प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो और वहां के कुछ अन्य नेताओं की टिप्पणी देश के आंतरिक मामलों में एक 'अस्वीकार्य हस्तक्षेप' के समान है। ऐसी गतिविधि अगर जारी रही तो इससे द्विपक्षीय संबंधों को 'गंभीर क्षति' पहुंचेगी।'

हालांकि कनाडाई राजदूत को तलब करने के बाद कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो ने एक बार फिर कहा कि उनका देश विश्व में कहीं भी शांतिपूर्ण प्रदर्शनों के अधिकारों के लिए प्रतिबद्ध है. उन्होंने कहा कि वह तनाव को घटाने और संवाद के लिए कदम उठाए जाने से खुश है.

कनाडा के बाद, संयुक्त राष्ट्र महासचिव के प्रवक्ता स्टीफन दुजारिक ने कहा, 'लोगों को शांतिपूर्वक प्रदर्शन करने का अधिकार है और अधिकारियों को उन्हें यह करने देना चाहिए।'

इसके बाद, ब्रिटेन के 36 सांसदों के एक समूह ने विदेश मंत्री डॉमिनिक राब को पत्र लिखकर उनसे कहा है कि, 'भारत में नए कृषि कानूनों के खिलाफ किसानों के आंदोलन के ब्रिटिश पंजाबी लोगों पर प्रभाव के बारे में वह अपने भारतीय समकक्ष एस. जयशंकर को अवगत कराएं।'

यह पत्र लेबर पार्टी के सिख सांसद तनमनजीत सिंह धेसी ने तैयार किया है. इस पर भारतीय मूल के कई सांसदों के हस्ताक्षर हैं. इन नेताओं में वीरेंद्र शर्मा, सीमा मल्होत्रा और वेलेरी वाज के साथ ही जेरेमी कॉर्बिन भी शामिल हैं। ब्रिटेन की संसद में इस विषय पर बहस भी हुई। ब्रिटेन, यूएनओ या अमेरिकी सत्ता से जुड़े लोगों के लिए कृषि कानून कोई मुद्दा नहीं है, बल्कि लोकतांत्रिक तरीके से आंदोलन के अधिकार पर सत्ता का दमन मुख्य मुद्दा है।

ऑस्ट्रेलिया में दक्षिण ऑस्ट्रेलियाई सांसद तुंग गो ने भारत सरकार से आग्रह किया था कि, 'किसी भी लोकतंत्र में उसके नागरिकों को मौलिक अधिकारों का इस्तेमाल करने की अनुमति होनी चाहिए।'

लोकतांत्रिक अधिकारों के हनन पर दुनिया भर के देश अपनी अपनी प्रतिक्रिया देते रहे हैं और जन आंदोलनों के साथ अपनी एकजुटता प्रदर्शित करते रहे हैं। खुद भारत ने भी ऐसे आंदोलनों के साथ अपनी हमदर्दी समय समय पर जताई है। अतः ऐसी प्रतिक्रियाएं असामान्य नहीं हैं। भारत ने विदेशी नेताओं की टिप्पणियों को 'भ्रामक' और 'गैर जरूरी' बताया है और कहा है कि यह एक लोकतांत्रिक देश के आंतरिक मामलों से जुड़ा विषय है। विदेश मंत्रालय ने कहा था, 'हमने भारत में किसानों से संबंधित कुछ ऐसी टिप्पणियों को देखा है, जो भ्रामक सूचनाओं पर आधारित हैं. इस तरह की टिप्पणियां अनुचित हैं, खासकर तब, जब वे एक लोकतांत्रिक देश के आंतरिक मामलों से संबंधित हों।

हम एक वैश्वीकरण के दौर में हैं। हमने विदेशी निवेशकों के लिए 100% एफडीआई की राह खोली है। हमारी भूमि में घुसपैठ करने वाले चीन के प्रति हमारा व्यापारिक रवैया उदार है। ऐसी स्थिति में यदि हम यह उम्मीद करें कि हमारे देश में हो रहे आंदोलनों पर हमारी सरकार की प्रतिक्रिया पर दुनिया अनदेखी कर देगी, तो यह सम्भव नहीं है। देश में आंतरिक लोकतांत्रिक मूल्य न केवल भाषणों में ही रहें, बल्कि वे धरातल पर भी दिखें, यह सबसे ज़रूरी है। क्या कारण है कि आंदोलनों के दमन के लिए ब्रिटिश काल में गढ़े गये सेडिशन कानून का इस्तेमाल साल 2014 के बाद अचानक बढ़ा है? क्या कारण है कि जांच एजेंसियों की प्राथमिकताएं सरकार की मंशा और इरादे के अनुरूप तय होती हैं, न कि घटना के सुबूतों के अनुसार? क्या कारण है कि सरकार की आलोचना से आहत हो सरकार पहले पत्रकारों की ही गर्दन पकड़ती है? क्या कारण है कि अचानक बुद्धिजीवी, सेक्युलर, लिबरल, प्रगतिशील, आदि शब्द सरकार के समर्थकों की शब्दावली में अपशब्दों के रूप में शामिल हो गए हैं? सवाल इतने ही नहीं है, और भी सवाल हैं। करोगे याद तो हरेक बात याद आएगी!

फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट अंतरराष्ट्रीय राजनीति से प्रेरित और किसी दबाव ग्रुप की कारस्तानी भी हो सकती है। हमारा प्रतिवाद भी अपनी जगह उचित है, पर वे कारक जिनसे दुनिया, लोकतंत्र और स्वतंत्रता के संदर्भ में हमारा आकलन कर रही है, वे तो अब भी सड़क पर गड़ी कीलों और स्टेन स्वामी द्वारा अपनी प्यास बुझाने के लिये मांगी गयी स्ट्रा के रूप में हमारी नीयत पर सवाल उठा रहे हैं। दुनिया भर में गिरती हुई इस छवि का असर न केवल भारत की प्रतिष्ठा पर पड़ेगा, बल्कि इसका असर देश के अंदर के सामाजिक ताने बाने और आर्थिक विकास पर भी पड़ेगा। क्या हमारी सरकार जन आंदोलनों से निपटने के संदर्भ में अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करेगी? ❑

आंदोलन जरूरी है, ताकि दिल्ली दूर न हो जाए!

❑ संजय तिवारी

दिल्ली एयरपोर्ट से बाहर निकलते ही आपको एक छोटा सा लेकिन अत्याधुनिक मोहल्ला दिखाई देगा, जिसका नाम एयरोसिटी है। इस एयरोसिटी में कोई एक दर्जन से अधिक फाइवस्टार होटल, फूड कोर्ट, आधुनिक ऑफिस इत्यादि बनाये गये हैं।

इस एयरोसिटी में आने के बाद आप सहसा भूल ही जाते हैं कि आप उसी दिल्ली में हैं, जिसकी आधी आबादी ऐसी कच्ची कालोनियों में रहती है, जहां शहर के मानक के अनुकूल कोई सुविधा नहीं है, लेकिन इन्हीं अभावग्रस्त मोहल्लों के बीच हवाई यात्रा करने वाले बिजनेस ट्रैवेलर्स ने अपने लिए एक छोटा सा यूरोप विकसित कर लिया है।

यह दिल्ली के दो तल हैं, जिनका आपस में कोई मिलन नहीं है। दुर्भाग्य से ये दो तल आपको मुंबई में भी मिलेंगे और बंगलौर में भी। सवाल ये उठता है कि क्या भारत सरकार ऐसी कोई नीति बना रही है, जिसमें एक ओर यूरोप के मानकों पर छोटे छोटे कस्बे विकसित हो रहे हैं तो दूसरी ओर कच्ची कालोनियों और झुग्गी झोपड़ियों का अथाह महासागर उमड़ रहा है?

अगर एक ही शहर दिल्ली के ये दो तल हैं, तो भारत के सुदूर गांवों में असमानता का स्तर क्या है? क्या इस असमानता से भारत सरकार के वे शासक परिचित हैं, जो लुटियंस जोन में बैठकर नीतियां बना रहे हैं और संसद में ध्वनिमत से पारित करवा रहे हैं? इस सवाल के जवाब में वर्तमान कृषि कानूनों में कथित सुधार और उसके विरोध में सड़क पर उतरे किसान का मर्म भी समझ में आयेगा। ये कहना आसान है कि इन किसानों को कांग्रेस समर्थन दे रही है। कांग्रेस समर्थन दे रही है तो गलत क्या कर रही है? विपक्ष में बैठे राजनीतिक दल आंदोलनों का समर्थन नहीं करेंगे तो कौन करेगा?

हमारे लिए यह जानना महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन सा राजनीतिक दल राजनीति कर रहा है, हमारे लिए ये जानना महत्वपूर्ण है कि किसानों के लिए बनाये गये कानून से किसान का कितना भला होगा और उन्हें विरोध का अधिकार है या नहीं? शुरुआत पहले सवाल से करते हैं। नरेन्द्र मोदी किसान नेता के रूप में नहीं जाने जाते। उनकी पहचान कॉरपोरेट घरानों के

नेता के रूप में रही है। दिल्ली के पॉवर कॉरीडोर में वे कॉरपोरेट घरानों के सबसे विश्वसनीय चेहरे हैं। मोदी मानते हैं कि कॉरपोरेट पूंजीवाद ही भारत का भविष्य है, इसलिए वे इसी दिशा में तेजी से काम कर रहे हैं। कांग्रेस भी काम यही कर रही थी, लेकिन बच बचा के।

भूलना नहीं चाहिए, कॉरपोरेट पूंजीवाद की शुरुआत भारत के कथित आर्थिक सुधारों के जनक कहे जाने वाले मनमोहन सिंह ने ही की थी। यह किसी पार्टी की नहीं, बल्कि भारत सरकार की नीति है, इसलिए जो आता है, भारत में आर्थिक सुधार की दिशा में आगे बढ़ जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की इतनी तल्ख यादें हमारे साथ जुड़ी हैं कि निजीकरण में ही सबको मोक्ष नजर आ रहा है। निजीकरण का यही दायरा अब फैलते फैलते खेत खलिहान तक पहुंच गया है। खेती के उत्पादन पर अब कंपनियों की नजर है। उन्हें कच्चा माल चाहिए और अपनी शर्तों पर चाहिए तो खेती में प्रवेश जरूरी है।

कृषि विधेयक के वर्तमान तीन कानून किसान के खेत में कंपनियों के प्रवेश के दस्तावेज हैं। कम लोगों को याद होगा कि प्रधानमंत्री बनते ही मोदी ने जो पहला कानून पारित करवाना चाहा था, वह भूमि अधिग्रहण का कानून था। मोदी भूमि अधिग्रहण कानून में कुछ ऐसे बदलाव करना चाहते थे कि किसान चाहकर भी अपनी जमीन को अधिग्रहण से बचा न पायें, लेकिन उस समय कांग्रेस के विरोध के कारण वह भूमि अधिग्रहण कानून पारित नहीं हो पाया। इस बार कांग्रेस संसद में किसान विधेयक को नहीं रोक पायी। ये विधेयक पारित हुए तो इसे लागू होने से रोकने के लिए किसानों को दिल्ली के दरवाजे तक पहुंचना पड़ा।

आज इस बात का आंकलन कर पाना मुश्किल है कि ये तीन कानूनी संशोधन किसान की आय कितनी बढायेंगे, लेकिन एक बात तो बिल्कुल साफ दिख रही है कि यह खेतों में कंपनियों के प्रवेश का कानून है। अगर बीते बीस साल का इतिहास देखें तो साफ दिखता है कि खेत में कंपनियों और बैंकों का प्रवेश शुभ नहीं रहा है। महाराष्ट्र में कपास के खेत में कंपनियों और बैंकों को प्रवेश मिला था। परिणाम ये हुआ कि देश को लगभग सवा लाख किसानों की लाश उठानी पड़ी। इस बार तो न सिर्फ कान्ट्रैक्ट फार्मिंग के दरवाजे खोले जा रहे हैं, बल्कि कंपनियों को असीमित भंडारण का अधिकार भी दे दिया गया है। कंपनियों के इतना अधिकारसंपन्न होने के बाद किसान ही नहीं, उपभोक्ता भी घाटे में ही रहने वाला है। आज मोदी द्वारा जिन कथित बिचौलियों को हटाने का हवाला दिया जा रहा है, वे तो छोटे मोटे आढ़तिये हैं, हट जाएंगे लेकिन कानून बनाकर मोदी जिन बिचौलियों को बिठाने जा रहे हैं, उन्हें हटाने के लिए कौन कानून बना पायेगा?

वैसे भी लुटियन्स जोन स्थित कृषि भवन में किसान नहीं जाते। वहां जाते हैं कंपनियों और कॉरपोरेट घरानों के अधिकारी कर्मचारी, जिनके लिए बाबुओं के केबिन में कुर्सियां लगाई जाती हैं। किसान अगर कभी वहां गया भी तो बाहर से भवन देखकर लौट आता है। ऐसे माहौल में सिर्फ नेता से ही ये उम्मीद रहती है कि वे लुटियंस जोन में देश के आम आदमी और किसान मजदूर की आवाज बनेगा। लेकिन प्रधानमंत्री मोदी जैसा नेता अगर लुटियन्स जोन में बैठकर किसान हितैषी होने की बात करे तो सहसा भरोसा करना मुश्किल होता है। ऐसे में अगर किसान संदेह व्यक्त कर रहे हैं तो क्या गलत कर रहे हैं?

किसान आंदोलन में मचे या मचाये गये उपद्रव से किसान आंदोलन का महत्व कम नहीं हो जाता। किसान को पूरा अधिकार है कि वह दम खम से अपना विरोध दर्ज करवाता रहे। लुटियन्स जोन को ये अहसास रहना जरूरी है कि वह मुट्ठी भर कंपनियों और कॉरपोरेट घरानों का नहीं, बल्कि इस देश के सवा सौ करोड़ लोगों का प्रतिनिधित्व करती है। ❑

निमंत्रण

उत्तर प्रदेश महिला सम्मेलन

आप सब से सादर आग्रह है कि आगामी 11 अप्रैल 2021 को पूज्य कस्तूरबा के जन्मदिन के अवसर पर असहयोग आंदोलन के 100वें वर्ष के आयोजन के तहत उत्तर प्रदेश सर्वोदय समाज के द्वारा महिला सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है, जिसका उद्देश्य पूर्वांचल और आसपास की महिलाओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और महिला संगठनों की एक साझेदारी विकसित करना है। इस दौर में देश के आज के हालात को देखते हुए आधी आबादी की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। आप सब अपनी भागीदारी सुनिश्चित करें, यह अनुरोध है। इस दो दिवसीय सम्मेलन में विचार विमर्श के लिए निम्नलिखित विषय तय किये गये हैं। अच्छा होगा यदि आप इन विषयों पर हमारी पत्रिकाओं के लिए अपने विचार लिख कर भी लायें, ताकि उनका प्रकाशन हो सके। आप अपने आने की सूचना जरूर दें।

1- आजादी की लड़ाई में महिलाओं की भूमिका, 2- मजदूर किसान आंदोलन और महिलाएं, 3- देश की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी, 4- नारीवादी आंदोलन की दशा और दिशा, 5- कार्यक्रम गतिविधियां और संगठन निर्माण।

सम्मेलन का स्थान- सर्व सेवा संघ परिसर राजघाट वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

पुतुल
मो. 94517 63043

जागृति राही
मो. 651864879

रामधीरज
मो. 9453047097

पटना किसान कन्वेंशन

लोकतांत्रिक जन पहल, बिहार के द्वारा दो दिवसीय राज्यस्तरीय किसान कन्वेंशन का आयोजन दिनांक 13 एवं 14 फरवरी को पटना स्थित बिहार दलित विकास समिति के हॉल में किया गया। इस कन्वेंशन में मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, वैशाली, छपरा, सीवान, पश्चिम चम्पारण, मधेपुरा, सहरसा, सुपौल, अररिया, कटिहार, बांका, मुंगेर, शेखपुरा, जमुई, खगड़िया, नवादा, नालंदा, जहानाबाद, अरवल, गया, औरंगाबाद, रोहतास, बक्सर और पटना सहित 28 जिलों के 129 समाजकर्मियों ने हिस्सा लिया, जिसमें कई जिलों में जारी स्वायत्त किसान आंदोलन के नेता भी शामिल थे।

कन्वेंशन में फादर जोस ने आगत साथियों का स्वागत करते हुए कार्यवाही की शुरुआत की। सत्य नारायण मदन ने कन्वेंशन की पृष्ठभूमि और उद्देश्यों को रखते हुए विमर्श की शुरुआत की। पहले दिन पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के क्षेत्रों में गत लगभग तीन महीने से तीन कृषि कानूनों को निरस्त करने की मांग को लेकर लगातार जारी आंदोलन के समर्थन के मद्देनजर बिहार में किसानों को गोलबंद करने की चुनौतियों पर व्यापक विमर्श हुआ, जिसमें हरेक जिले से साथियों ने अपनी बात रखी। एक बात प्रमुखता से उभर कर आयी कि बिहार में किसानों और खेतिहर मजदूरों के बीच के संबंधों की जटिलता को समझते हुए काम करना होगा। पहले दिन प्रथम सत्र की अध्यक्षता सुधा वर्गीज, देव कुमार, प्रो. विद्यानंद और रिज़वान अहमद ने की तथा संचालन किया कंचन बाला ने। दूसरे सत्र की अध्यक्षता डॉ उषा, कारू, जालंधर और उमेश (मुज्जफरपुर) ने की एवं संचालन किया मो. कलाम ने।

पहले दिन के सत्र समाप्ति के पूर्व जिलों से आये सभी साथियों के बीच समूह चर्चा के लिए प्रमंडलवार समूह बनाया गया। समूह चर्चा मुख्य रूप से तीन विन्दुओं पर हुई- 1. आपके जिले में खेती-किसानी के विशेष मुद्दे 2. बिहार में किसानों को किस तरह संगठित किया जाय और 3. कार्यक्रम का स्वरूप। समूह चर्चा का समायोजन जगत भूषण (गया) ने किया।

दूसरे दिन के सत्र की अध्यक्षता सि. ज्योति, फादर जोस, प्रदीप प्रियदर्शी और अशोक वर्मा ने की तथा संचालन किया सत्य नारायण मदन ने।सत्र के शुरू में मिथिलेश कुमार निराला (गया) और महेंद्र रौशन ने गीत प्रस्तुत किया। उसके बाद समूह चर्चा की रिपोर्ट रखी गई, जिसमें राज्यस्तर से लेकर पंचायत स्तर तक संगठन बनाने के अलावा कई कार्यक्रमों के सुझाव आये, जिस पर विचार कर निर्णय लेने के लिए कॉर्डिनेशन कमिटी को सौंपा गया। उसके बाद सदन में भी कार्ययोजना पर कई सुझाव रखे गए।एक सुझाव आगामी 8 अप्रैल 2021 को पटना में विशाल किसान मार्च का भी आया। दूसरे दिन के सत्र में बोलने को इच्छुक सभी साथियों ने अपनी बात रखी। अंत में सत्य नारायण मदन ने प्रस्ताव रखे, जिसे सदन ने सर्वसम्मति से पारित किया। कन्वेंशन में निम्नलिखित प्रस्तावों का सर्वसम्मति से अनुमोदन किया गया-

1- बिहार व देश में एक स्वतंत्र व स्वायत्त किसान आंदोलन की जरूरत है।
2- किसान आंदोलन लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय के बुनियादी मूल्यों को नजरंदाज नहीं करेगा।
3- कन्वेंशन में शामिल सभी साथी राज्य परिषद के सदस्य होंगे।
4- प्रत्येक जिले से एक व्यक्ति को लेकर राज्य स्तर पर किसान कॉर्डिनेशन कमिटी बनेगी।
5- राज्य कॉर्डिनेशन कमिटी यदि जरूरत समझेगी तो अन्य किसी व्यक्ति को सदस्य के रूप में जोड़ सकती है अथवा आमंत्रित के रूप में बुला सकती है।
6- किसान संगठन का नाम तय करने की जिम्मेदारी राज्य कॉर्डिनेशन कमिटी को दी गयी।
7- सदन में शामिल सभी साथियों के हस्ताक्षर के साथ किसान आंदोलन के नेताओं को सॉलिडरिटी पत्र भेजा गया।

इसके अलावा सदन ने यह भी निर्णय लिया कि आगामी 18 मार्च 2021 को प्रत्येक जिले में किसान मार्च का आयोजन किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि 18 मार्च सन् 74 बिहार आंदोलन की ऐतिहासिक तिथि है।

कंन्वेशन के अंत में फादर जोस ने सभी साथियों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

-कंचन बाला

जल, जंगल, जमीन

आदिवासी-जीवन का यही आधार है

❑ जयपाल सिंह मुंडा

संविधान सभा के लिए वयस्क मताधिकार द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन के जरिये कुल 389 सदस्यों का चुनाव 1946 में ही संपन्न करा लिया गया था। बंटवारे के बाद भारत में 299 सदस्य ही रह गये। इनमें से 229 सदस्य चुने हुए तथा 70 सदस्य मनोनीत थे। महिला सदस्यों की कुल संख्या 15 थी, अनुसूचित जाति के 26 तथा अनुसूचित जनजाति के 33 सदस्य चुने गये थे। जयपाल सिंह मुंडा संविधान सभा में जनजातियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वे छोटा नागपुर (अब झारखंड) राज्य की मुंडा जनजाति के थे। बचपन से ही मेधावी होने के कारण मिशनरीज ने उन्हें आगे पढ़ने के लिए ऑक्सफोर्ड भेजा। 1922 में उन्होंने स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल की। इस दौरान वे इंटर यूनिवर्सिटी प्रतियोगिताओं में ऑक्सफोर्ड शायर और विंबलडन क्लब की ओर से हॉकी खेलते रहे। इसी बीच उनका चयन भारतीय सिविल सेवा (आईसीएस) में हो गया, लेकिन वे आईसीएस का प्रशिक्षण पूरा नहीं कर सके, क्योंकि 1928 में उन्हें एम्सटर्डम ओलम्पिक में शामिल होने वाली भारतीय हॉकी टीम का कप्तान चुना गया। देश को ओलम्पिक स्वर्ण पदक दिलाने के बाद जब वे स्वदेश वापस लौटे तो आईसीएस में जाने से इनकार कर दिया। जयपाल सिंह मुंडा विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। चीजों को समझने के लिए उनके पास आदिवासियत की नजर भी थी, तो ऑक्सफोर्डियन दृष्टि भी थी। वे अपने पुरखों की बनायी आदिवासी दुनिया और शोषण व लूट पर खड़ी की गयी आधुनिक सभ्यता के बीच पढ़-लिखकर शिक्षित हुए। इसलिए दोनों के मूल चरित्र और जीवन दर्शन की खामियों और खूबियों को वे अच्छी तरह समझते थे। वे बहुत सोच समझकर और सटीक बोलते थे। संविधान सभा के कुल 165 कार्य दिवसों में लाये गये संशोधन प्रस्तावों और उन पर हुई चर्चाओं के दौरान दिये उनके वक्तव्यों से पता चलता है कि कुल 26 कार्य दिवसों में उन्होंने सीधा बौद्धिक हस्तक्षेप किया। संविधान सभा में उनका यह वक्तव्य 30 अप्रैल, 1947 का है, जिसमें उन्होंने आदिवासियों के लिए जल, जंगल व जमीन की अहमियत रेखांकित की है। उनके वक्तव्य के साथ सरदार पटेल का दिया हुआ जवाब भी है। यह पेशकश इसलिए भी, ताकि हम जान सकें कि इन बुनियादी मुद्दों पर एक आजाद देश की प्रारंभ से अब तक की यात्रा आज भी उन्हीं सवालों से जूझ रही है। **-सं.**

श्रीमान् अध्यक्ष, कल हमारी बैठक समाप्त होने तथा संशोधन उपस्थित करने के लिए आपके द्वारा निर्धारित समय में अधिक अंतर न था। इसलिए यदि पूरक सूची 2 में 19 नंबर का संशोधन भाषा की दृष्टि से वैसा उत्तम न हो, जैसा कि किसी कुशल मसविदा बनाने वाले को उसे रखना चाहिए था, तो इसके लिए मैं परिषद से क्षमा मांगता हूं।

मेरे संशोधन का उद्देश्य हाउस को यह बताना है कि पूर्ण रूप से पृथक तथा आंशिक रूप से पृथक क्षेत्रों में जाने के लिए नियुक्त उप-समितियों ने अभी तक अपनी जांच का परिणाम बड़ी सलाहकार-समिति के आगे उपस्थित नहीं किया है। हमारे सामने उपस्थित धारा में ऐसी व्यवस्था है, जो लाखों की संख्या में आदिवासी जनता के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इन दो उप-समितियों की, विशेष कर उत्तर पूर्वी कबायली प्रदेशों से या कहा जाये तो बंगाल-असम समूह से संबंध रखने वाली उप-समिति की सिफारिशों की जानकारी पर ही इस व्यवस्था को बहुत कुछ निर्भर रहना चाहिए। जब तक हम यह न जानें कि ये सिफारिशें क्या हैं, तब तक हमें इस धारा तथा उसकी व्यवस्थाओं पर विचार करना अबुद्धिमत्तापूर्ण, अनुचित तथा समय से पहले की बात जान पड़ती है। इसलिए क्या मैं यह सुझाव उपस्थित कर सकता हूं कि इस धारा पर विचार दोनों उप-समितियों की रिपोर्टें मिलने तक स्थगित रखा जाये? तब हमें ज्ञात हो सकेगा कि उनकी सिफारिशें क्या हैं।

अध्यक्ष महोदय, मैं इसी हाउस में पहले एक अवसर पर कह चुका हूं कि धरती (जल, जंगल, जमीन) आदिवासी-जीवन का आधार है। हम यहां एक ऐसी व्यवस्था पर विचार कर रहे हैं, जो पूर्ण रूप से पृथक तथा आंशिक रूप से पृथक कहे जाने वाले केवल 34 प्रदेशों की जातियों के लिए ही नहीं, बल्कि इन प्रदेशों से बाहर रहने वाले लाखों व्यक्तियों के लिए भी जीवन-मरण का प्रश्न है। बंगाल का ही उदाहरण लीजिए। वहां लगभग 20 लाख आदिवासी ऐसे हैं, जो न तो पूर्णतः पृथक क्षेत्रों में आते हैं और न आंशिक रूप से पृथक क्षेत्रों में ही। दोनों उप-समितियों को उनकी समस्या पर भी विचार करना पड़ेगा, यद्यपि परिभाषानुसार इनका संबंध केवल उन्हीं प्रदेशों से है, जिन्हें पृथक प्रदेश या आंशिक रूप से पृथक प्रदेश कहा जाता है। इस अंतःकालीन अवस्था में अपने संशोधन को आगे बढ़ाने की मेरी कदापि इच्छा नहीं है।

मैं यह कहना चाहता हूं कि हम एक ऐसे निश्चय पर पहुंच रहे हैं, जिसे चाहे अभी भले ही हम अंतःकालीन निश्चय ही कहें-मुझसे अभी कहा गया है कि हम इस पर फिर से विचार करेंगे-परंतु ऐसा करके हम केवल अपना ही काम बढ़ायेंगे। एक प्रश्न के संबंध में निश्चय पर पहुंच कर हम अपना समय नष्ट कर रहे हैं, जो दोनों उपसमितियों की सिफारिशों पर निर्भर रहेगा। मैं विनीत भाव से केवल यही निवेदन करना चाहता हूं।

मुझे यह जानकर संतोष हुआ है कि प्रस्तावक को 'तर्कसंगत' (Reasonable) शब्द निकाल देने में कोई आपत्ति नहीं है। मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है, उसे पढ़ने से आपको प्रकट होगा कि उसके दो भाग किये

जा सकते हैं। पहले तो मैं यहां या और कहीं ऐसा स्पष्ट आश्वासन चाहता हूं, जिससे भारत की कबायली जातियों की 3 करोड़ जनता को (यह संख्या 1941 की जनगणना के अनुसार है और यह ठीक है या गलत, यह प्रश्न यहां नहीं उठता) विश्वास हो जाये कि मौजूदा कानूनों के अंतर्गत उन्हें जो संरक्षण उसे प्राप्त है, वह कायम रहेगा। धारा का वर्तमान स्वरूप कबायली जातियों के मन में गहरी आशंका उत्पन्न करता है। दोनों उप-समितियों को अभी पृथक तथा आंशिक रूप से पृथक प्रदेशों में फिर से जाना पड़ेगा, उन्हें छोटा नागपुर भी जाना पड़ेगा।

मैं आदिवासी दृष्टिकोण से इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि भूमि आदिवासियों के जीवन का आधार है। मेरा ख्याल है कि असम के प्रधानमंत्री मेरी इस बात का समर्थन करेंगे कि जब तक आदिवासियों को यह आश्वासन नहीं दिया जाता है कि उन्हें जो संरक्षण प्राप्त है, उस पर इस धारा से कोई प्रभाव न पड़ेगा, तब तक उन्हें तथा उप-समितियों को पृथक तथा आंशिक रूप से पृथक प्रदेशों में जाना असंभव हो जायेगा। मुझसे पहले बोलने वाले माननीय सदस्य इस बात पर जोर दे चुके हैं। अभी काफी भ्रम फैल चुका है। मैं तो चाहता हूं कि उप-समितियों की रिपोर्टें मिलने तक इस धारा को स्थगित रखा जाये। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि हम जहां भी कहीं गये हैं, वहीं कहा गया है कि अभी कई वर्ष तक आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल न किये जाने की आवश्यकता है। यदि मैं इस संरक्षण के लिए लड़ता हूं तो अधिकांश सदस्य हंसेंगे।

आज ही प्रातःकाल एक मित्र ने मुझसे बात करते समय कहा था—''क्या आप चाहते हैं कि सृष्टि के अंत तक आदिवासियों की भूमि की बेदखली न हो सके?'' आदिवासियों की महत्त्वपूर्ण मांगों का जैसा मजाक उड़ाया जाता है, यह उसी का एक उदाहरण है। हम समानता की बातें करते रहे हैं। समानता की बात बड़ी भली जान पड़ती है, किन्तु जब आदिवासियों के भूमि पर अधिकार का प्रश्न उठता है तो मैं भेदभाव की मांग करता हूं। इसीलिए मैं अनुरोध करता हूं कि उन समितियों की रिपोर्ट प्राप्त होने तक, जो आदिवासियों के संबंध में विचार करेंगी, इस धारा पर विचार स्थगित रखा जाये, क्योंकि वह आदिवासियों के अधिकारों को प्रभावित करेगा। इस संबंध में कोई भी निश्चय न किया जाये, चाहे यह निश्चय कितना भी अस्थाई क्यों न हो। मैं प्रस्तावक सरदार वल्लभभाई पटेल से अनुरोध करता हूं कि इस धारा तथा इसकी व्याख्याओं पर विचार स्थगित रखा जाये। अभी मैं अपना संशोधन आगे नहीं बढ़ाना चाहता।

सरदार वल्लभभाई पटेल : *जयपाल सिंह को आशंका है कि अभी जिन कानूनों द्वारा कबायली जातियों के लोगों को संरक्षण प्राप्त है, उन्हें हटा दिया जायेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि यह आशंका क्यों है? हम वर्तमान कानूनों को रद्द करने या नये कानून बनाने की कार्रवाई थोड़े ही कर रहे हैं। इस धारा का संबंध तो मौलिक अधिकारों से है। इसके द्वारा वर्तमान कानूनों को रद्द नहीं किया जाता। वर्तमान कानून-व्यवस्था को कहीं स्पर्श नहीं किया गया है, सिवाय उन स्थलों के जहां वे विधान की रक्षा के मौलिक अधिकारों के विरुद्ध पड़ती हों। इसलिए आशंका की गुंजाइश बिल्कुल नहीं है। परंतु मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं। लोग कबायली जातियों की रक्षा के लिए जो कुछ कह रहे हैं, क्या उसका उद्देश्य यही है कि ये जातियां सदा इसी अवस्था में बनी रहें? मेरे ख्याल में ऐसा करना उनके हित में नहीं होगा। मेरा तो विचार है कि हमें कबायली जातियों को जयपाल सिंह के स्तर पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए, न कि यह कि वे इसी रूप में बनी रहें, ताकि दस वर्ष बाद जब मौलिक अधिकारों पर पुनः विचार हो तो वे हमारे ही स्तर तक आ जायें और ''ट्राइब'' शब्द ही हटा दिया जाये। ''ट्राइब'' (जनजातियों) के लिए पृथक प्रबंध करना भारतीय संस्कृति के लिए शोभनीय नहीं है। ''ट्राइब'' का क्या अर्थ है? ''ट्राइब्ज'' का जो कुछ अर्थ लगाया जाता है, क्या वास्तव में यही उनका मतलब है? इसका कुछ और मतलब है और यह बना इसलिए कि पिछले 200 वर्ष से विदेशी शासक उन्हें अलग-अलग समूहों में कायम रखने का प्रयत्न करते रहे हैं, ताकि उनके रीति-रिवाज आदि सभी कुछ भिन्न रहें, और जिससे कि विदेशियों को शासन में सुविधा रहे। शासक उनकी अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं चाहते थे। यही कारण है कि आज हमारे मध्य अस्पृश्यता का अभिशाप है, कबायली जातियों का अभिशाप है, सत्ताधारियों के स्वार्थों का अभिशाप है और इसके अतिरिक्त और भी कितने ही अभिशाप हैं। हम इन सभी को मौलिक अधिकार देने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारा प्रयत्न इन अभिशापों को हटाने का होना चाहिए। दस वर्ष बाद जब हम स्थिति पर पुनः विचार करें तो हमें ऐसी अवस्था में होने की आशा करनी चाहिए कि ''ट्राइब्ज'' शब्द की जगह कोई अन्य शब्द रख सकें। जिन कानूनों से उन्हें संरक्षण मिलता रहा है, वे सभी बने हुए हैं, परंतु क्या इन कानूनों से उनकी रक्षा हो सकी है? हम इन जातियों को उनकी वर्तमान अवस्था में नहीं रहने देना चाहते। उनकी रक्षा वर्तमान कानूनों द्वारा नहीं होगी। उनकी रक्षा तो हमारे अपने कार्य और हमारी नेकनीयती से होगी। इसलिए मैं जयपाल सिंह से अनुरोध करता हूं कि वे कोई आशंका न करें। स्वाधीन भारत में उन्हें भय की वैसी आशंका न रहेगी, जैसी पिछले 200 वर्षों में रही है।*

एक नियम संबंधी आपत्ति है। श्रीमान्, सभापति, मुझे कबायली जातियों के संबंध में वैसी कोई आशंका नहीं है, जैसी कि चर्चा माननीय सरदार पटेल ने मेरे संबंध में उठायी है। मुझे यह कहते हुए खेद हो रहा है कि मैंने जो कुछ कहा है, उसका मतलब उन्होंने अपने ढंग से अलग ही लगाया है। यह सत्य हो सकता है कि कबायली जातियों की अवस्था में आगे जाकर सुधार हो जाये। संभव है कि वे मेरे स्तर तक आ जायें। परंतु इसका यह मतलब तो नहीं लगाया जा सकता कि हम जिस नीति का अनुसरण करते रहे हैं, उसे और भी रक्षापूर्ण या सहानुभूतिपूर्ण न बनाया जाये। मैं जानता हूं कि दस वर्ष बाद हमें उस पर फिर से विचार करना ही पड़ेगा। ❑

आप बहादुर नहीं हैं, आप कायर हैं, जो ताकत पर फूल रहा है!

(संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के दौरान लोकसभा में दिये गये भाषण के संपादित अंश)

❑ **महुआ मोइत्रा**

अमेरिकी पत्रकार एल्मा डेविस के शब्द, हमारे गणतंत्र की 72वीं सालगिरह मनाने के लिए बिल्कुल उपयुक्त हैं कि इस गणतंत्र का निर्माण न तो कायरों ने किया था और न ही इसे कायर बचाकर रख पायेंगे। आज मैं कायरता और साहस और इन दोनों के बीच के अंतर के बारे में बात करूंगी, उन कायरों के बारे में, जो सत्ता, ताक़त, नफ़रत, गुंडागर्दी और असत्य की आड़ के पीछे छिपते हैं और इसे साहस कहने का दुस्साहस करते हैं। आखिरकार इस सरकार ने भ्रामक सूचनाओं और दुष्प्रचार को एक कुटीर उद्योग में बदल दिया है, जिसकी सबसे बड़ी सफलता, कायरता को साहस के तौर पर स्थापित करना रही है। मैं अलग-अलग घटनाएं सामने रखूंगी, जहां इस सरकार ने अपना 'साहस' दिखाया है.

सरकार का कहना है कि उसने एक ऐसा क़ानून लाकर साहस किया है, जो ये नियम तय करता है कि कौन भारतीय है और कौन नहीं। नागरिकता संशोधन बिल, इसी सदन में 2019 में यह कहकर पास हुआ था कि पड़ोसी देशों के उत्पीड़ित हिंदुओं और अन्य अल्पसंख्यकों को नागरिकता मिलेगी। लेकिन इसने कई पीढ़ियों से इसी देश में रह रहे, करोड़ों लोगों के मन में असुरक्षा की भावना पैदा कर दी। गृह मंत्रालय के मुताबिक, इस संशोधन को लागू करने के लिए नियम दिसंबर, 2020 तक तैयार ही नहीं किए गए थे। इसकी समय सीमा एक बार फिर अप्रैल तक बढ़ा दी गई है, अगर इस सरकार को पड़ोसी देशों में सताए जा रहे अल्पसंख्यकों की इतनी ही फिक्र है, तो लगातार समय सीमा कैसे पूरी नहीं हो रही है? इसी बीच हम में से कई लोगों ने, इस सरकार से ये कहने की हिम्मत दिखाई है कि हम 'क़ाग़ज़ नहीं दिखाएंगे।'

टैगोर के स्वर्ग 'शांति निकेतन' के ऊपर केंद्र का प्रभाव डालने से आपका असली रंग नहीं बदल जाएगा। जन-गण-मन का केवल एक छोटा सा हिस्सा ही, हमारे राष्ट्रगान के तौर पर स्वीकृत किया गया था। मैं चाहूंगी कि सरकार, उसका बाकी हिस्सा भी पढ़े, शायद उससे आपको टैगोर और बंगाल को बेहतर समझने में मदद मिलेगी। मेरे साथी और सदन में कांग्रेस के नेता (अधीर रंजन चौधरी) ने भी सदन में ये शब्द दोहराए हैं, लेकिन मुझे लगता है कि उनको बार-बार दोहराते रहना शायद इस देश का कुछ भला ही करेगा।

साहस कि जिसने दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र को लगभग एक पुलिस राज में तब्दील कर दिया, जहां एक संदिग्ध शिकायत के आधार पर इस सदन का एक सदस्य और देश का एक बड़ा पत्रकार, देशद्रोह का आरोपी बना दिया जाता है। साहस कि किसी भी राज्य सरकार को छल से या बल से गिरा दिया जाए, भले ही आपको चुनावों में बहुमत मिला हो या कि न मिला हो। आपका दावा है कि आप का सृजनात्मक सहयोग और सहकारी संघवाद में भरोसा है, लेकिन राज्य सरकारों के साथ सहयोग करने के बजाय, आप उनको हर संभव तरीके से कुचलने की कोशिश करते हैं।

साहस कि केवल 4 घंटे की नोटिस पर, राष्ट्रीय लॉकडाउन का ऐलान कर देना, जिसके नतीजे में अकथनीय दुःख और अनगिनत मौतें आयीं, हज़ारों लोगों के सैकड़ों किलोमीटर, भूखे-प्यासे चलने का नज़ारा देखने को मिला। इस सामाजिक स्थानांतरण पर इस सरकार ने दो फ़ीसदी से भी कम खर्च किया, जबकि बड़े विकसित देशों ने इस पर 20 फ़ीसदी और मध्य आय वाले देशों ने भी 6 फ़ीसदी ख़र्च किया।

साहस नहीं, सिर्फ दुस्साहस कि आपने आर्थिक पुनर्गठन का ऐलान कर दिया। साल 2020 में विकासशील देशों में सबसे खराब प्रदर्शन भारत का था। अगर इस सरकार के ही आर्थिक सर्वे पर यक़ीन किया जाए, तो अर्थव्यवस्था 2020 में 7.7% गिरी और 2021 में 11 फ़ीसदी ऊपर आएगी। जमीनी असलियत ये है कि 2 साल के समय में 2022 में जाकर अर्थव्यवस्था समतल हो पाएगी। तब जाकर हम 2019 के जीडीपी आंकड़ों के बराबर वापस पहुंचेंगे। सर्वे कहता है कि ग्रोथ (बढ़त) से ही गरीबी मिट सकती है, और अगले दो सालों तक हम कोई ग्रोथ करने ही नहीं वाले हैं।

आप किस बात का जश्न मना रहे हैं? मैं एक ग्रामीण संसदीय क्षेत्र से आती हूं, जहां से तमाम विस्थापित कामगार भी आते हैं। एमएसएमई सेक्टर में मंदी असली है। इस आर्थिक पुनर्गठन से केवल बड़े उद्योग ही और मज़बूत हुए हैं। एक फ़ीसदी अमीर लोग और अमीर हो गए हैं और एमएसएमई सेक्टर का दर्द और बढ़ गया है।

सरकार ने साहस किया, ये कहने का कि उसने डायरेक्ट ट्रांसफर योजना के द्वारा 1 लाख 13 हज़ार करोड़ रुपए दिए और उसके बाद पेट्रोल और डीज़ल पर सेस बढ़ाकर, वही

पैसा उन्हीं गरीबों और मध्यवर्ग से वापस ले लिया। हम वह देश नहीं हैं, जो अपनी बढ़त के साथ संपत्ति को साझा भी कर रहा है। हम ऐसा देश लग रहे हैं, जो केवल आपस में गरीबी ही बांट रहा है! हद तब हो जाती है, जब आज बजट पेश किए जाने के बाद सेंसेक्स में उछाल आ जाता है। ऐसे देश में जहां, आबादी के केवल 4.6 फ़ीसदी यानी कि 6 करोड़ लोग ही टैक्स देते हैं, वहां कितने लोगों ने शेयर बाज़ार में पैसा लगाया होगा कि वे खुशी से उछल पड़ें?

साहस कि आप विदेश मंत्रालय के आधिकारिक माध्यम का प्रयोग, सोशल मीडिया पोस्ट्स का जवाब देने के लिए करें, वह भी एक 18 साल की पर्यावरण एक्टिविस्ट और एक अमेरिकन पॉप स्टार की पोस्ट पर! जबकि उसी सरकार द्वारा, किसी मंत्रालय को लगभग 90 दिन से आंदोलन कर रहे किसानों के भोजन, पानी, सफाई का जिम्मा नहीं दिया जाता है।

ये कृषि क़ानून बिना सहमति बनाए लाए गए, बिना जांच के सदन में रखे गए और सत्तापक्ष द्वारा बलपूर्वक इस देश के हलक में डाल दिए गए। इसने इस सरकार के उद्देश्य को बिल्कुल साफ़ कर दिया है, 'नैतिकता पर निर्ममता का इस्तेमाल'..और आपके अलावा इस देश का हर व्यक्ति या तो कायर बना दिया गया है या फिर आतंकवादी, वे चाहे किसान हों या छात्र नेता या फिर शाहीनबाग़ की बूढ़ी औरतें!

आप कहते हैं कि आप में साहस है? आपका दावा है कि आपने वह किया है, जो आपसे पहले किसी ने नहीं किया है? बिल्कुल, ये बिल्कुल सच है। आपने बस अपने साहस के दावे के अलावा, अपने पूरे फ़ासीवादी तरीके से, ओछेपन-दुर्भावना-घृणा-गुंडागर्दी का हर काम किया है! आपसे पहले किसी ने ये इसलिए नहीं किया, क्योंकि ऐसा नहीं था कि उनमें साहस नहीं था, बल्कि ये सही काम ही नहीं था। क्या कभी आपको ये ख्याल आता है?

भारत का दुर्भाग्य सिर्फ ये नहीं है कि उसे उसकी सरकार ने निराश किया, बल्कि लोकतंत्र के दो और खंभों, मीडिया और न्यायपालिका ने भी यही किया है। ब्रिटिश लेबर पार्टी के सांसद लॉर्ड हेन ने हाउस ऑफ लॉर्ड्स में कहा था, 'चाहे हाउस ऑफ लॉर्ड्स हो या कॉमंस, संसद में रहने का क्या लाभ, अगर आप अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाते, अगर आप अपने विशेषाधिकार का प्रयोग आज़ादी और न्याय को बढ़ावा देने में नहीं करते!'

इस देश की सबसे पवित्र चीज़ मानी जाने वाली न्यायपालिका अब पवित्र नहीं रही, वह उसी दिन अपवित्र हो गई थी, जब देश के चीफ़ जस्टिस पर यौन शोषण के आरोप लगे थे और वे खुद ही अपने मुकदमे में जज बन गए थे। पहले खुद को बरी किया और और फिर सेवानिवृत्ति के 3 महीने बाद ही, राज्यसभा नामांकन लेकर साथ में ज़ेड प्लस सुरक्षा भी हासिल कर ली।

महोदय, ये बेहद अहम है कि न केवल मैं इससे परहेज न करूं, बल्कि उनको सामने रखूं, क्योंकि उन सज्जन पर यौन शोषण का आरोप मैंने नहीं, किसी और ने लगाया था। उस पर ट्रायल हुआ, जिसमें वे खुद ही जज रहे। यह शर्मनाक है कि राष्ट्रपति द्वारा उस पद पर बैठाए गए व्यक्ति पर, ऐसा भयानक आरोप लगे। न्यायपालिका ने उसी दिन पवित्र होना छोड़ दिया था, जब उसने ये महान मौका छोड़ दिया था। इससे पहले या शायद कभी भी न्यायालय की सबसे बड़ी बेंच के पास ऐसा मामला नहीं आया था कि इस लोकतांत्रिक गणराज्य के मूलभूत सिद्धांत लागू हों, बल्कि उसने प्रवासियों को सड़क पर मौत की ओर चलने दिया, हमारे सबसे अहम लेखकों, एक्टिविस्टों को जेल में सड़ने दिया और अब मूकदर्शक बनी बैठी है, जब एक नौजवान को मज़ाक करने के लिए जेल भेज दिया जाता है।

संभवतः न्यायपालिका, शक्तियों के विभाजन का सिद्धांत भूल गई है कि केवल और केवल संसद ही क़ानून बना सकती है। अगर किसी क़ानून में कुछ ग़लत है, तो अदालतें उसे निरस्त कर सकती हैं या फिर उस पर असंवैधानिक होने के कारण स्टे दे सकती हैं। लेकिन अगर ऐसा नहीं है, तो अदालतों को कुछ नहीं करना चाहिए, इसका परिणाम केवल और केवल सरकार को भुगतना चाहिए। अगर सरकार कृषि क़ानून लाई है, तो या तो सरकार उसे निरस्त करेगी या फिर जनता सरकार को सत्ता से बाहर कर देगी।

हमको इमरजेंसी के दौरान, जबलपुर हाईकोर्ट के एडीएम जैसी सज्जनता और साहस दिखाए जाने की तुरंत ज़रूरत है। सुप्रीम कोर्ट लगातार नागरिकों को निराश कर रहा है और विशेषाधिकारों से केवल अपना ही संरक्षण कर रहा है। भारतीय मीडिया का बहुत बड़ा हिस्सा, एक नए निचले स्तर पर जा पहुंचा है। न केवल तथ्यपरक रिपोर्टिंग के अभाव में, बल्कि पत्रकारिता के सिद्धांतों की पूरी अनुपस्थिति के कारण भी। फिर भी, जब मानक इतने गिर चुके हैं, तब एक व्हॉट्सएप चैट लीक होती है, जिससे मीडिया, रेटिंग एजेंसी और पूंजीपतियों की सांठगांठ का वह खेल सामने आता है, जिससे हमको बचाने का इस सरकार का दावा है। जो भी साहसी मीडिया का हिस्सा इससे बचा है, उसे अब कानूनों से निशाना बनाया जा रहा है। आप कांग्रेस पर आपातकाल को लेकर तंज़ करते हैं, आज भारत एक अघोषित आपातकाल में जी रहा है, लेकिन सरकार का आकलन ग़लत है, कायरता और साहस के बीच एक मूलभूत अंतर है। कायर केवल तभी बहादुर होता है, जब वह शक्ति से लैस होता है। सच्चा साहसी, निहत्था होकर भी लड़ाई नहीं छोड़ता है।

ये मत भूलिएगा कि जब आप गाजियाबाद का आंदोलनस्थल पुलिस और नौकरशाही के दम पर रातोंरात खाली कराने का आदेश देते हैं, तो आप कोई साहसी नहीं हैं, आप कायर हैं, जो शक्ति का दुरुपयोग कर रहा है।असली बहादुर वे लोग हैं, जो गांवों से बिना किसी संसाधन के चले आए, सिर्फ ये मानकर कि उनके विरोध का कारण न्यायसंगत है। उनके पीछे की ताक़त, उनके नेता के आंसू थे,न कि किसी वॉटर कैनन की पानी की तेज़ धार।

ये मत भूलिएगा कि जब आप सड़कें बंद करते हैं या हरयाणा के 17 जिलों में इंटरनेट बंद कर देते हैं, तो आप बहादुर नहीं हैं। आप कायर हैं, जो ताकत पर फूल रहा है। हरियाणा राज्य से भारतीय वायुसेना का 10 फीसदी और

भारतीय नौसेना का 11 फीसदी मानव संसाधन आता है। वहां के लोगों को न तो राष्ट्रविरोधी कहा जा सकता है, न ही आतंकी और न ही गद्दार।

आप भूलिएगा नहीं कि कैसे 60 दिन से चल रहा एक आंदोलन, धूर्तता से क़ब्ज़ा कर लिया जाता है, फिर मासूम किसानों पर मुकदमें दर्ज होते हैं। आप साहस नहीं दिखा रहे हैं, आप कायर हैं, जो शक्ति पा गया है।

1783 में, बघेल सिंह और जस्सा सिंह आहलूवालिया ने तब अपनी टुकड़ियों के साथ दिल्ली को मुग़लों से छीन लिया था। उनके वंशजों को उनसे साहस का सबक नहीं चाहिए, जिन्होंने दिल्ली पर 2014 में ही क़ब्ज़ा हासिल किया है।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस के 153वें जयंती वर्ष में केंद्र सरकार ने नेताजी की विरासत को हथियाने का हर प्रयास कर लिया है और उसको अपने साहस के संकीर्ण धागों में बुनने की कोशिश की है। लेकिन इस देश को पता होना चाहिए कि नेता जी के दो युद्धघोष थे, जो दोनों ही उनके साहस और उनकी भावना के प्रतीक थे। पहला था अभिवादन – जय हिंद, जिस राष्ट्रीय अभिवादन को आज इस सरकार ने एक संकीर्ण धार्मिक नारे में बदल दिया है, जिसे ये युद्धघोष की तरह दुर्व्यवहार करने, धमकाने और हमेशा अल्पसंख्यकों को ये याद दिलाने के लिए इस्तेमाल करते हैं कि सत्ता किसकी है।

नेताजी का दूसरा नारा था, दिल्ली चलो। ये सरकार नेताजी के नाम की सेवा करने का दिखावा करती है, पर सच ये है कि आपने सिंघू, टीकरी और ग़ाज़ीपुर में सीमाओं को दीवारों और कीलों से घेर दिया है। उन लोगों को रोकने के लिए, जो सुभाष चंद्र बोस की ही तरह, दिल्ली आकर आपको बताना चाहते हैं कि वे आधे में नहीं मानने वाले। नेताजी ने हमसे कहा था कि कभी भी भारत के भाग्य पर यक़ीन मत खोना और भारत के भाग्य में कायरों के द्वारा राज किया जाना नहीं लिखा है। अब हम सबके लिए साहस दिखाने का समय आ गया है। ❑

गांधीवाद की प्रासंगिकता और अव्यावहारिक सरकारी नीतियां

❑ डॉक्टर अमिताभ शुक्ल

बा और बापू की 150 वीं जयंती देशभर में मनाई गई। अखबारों में समाचार आए, घोषणाएं हुई और कार्यक्रम आयोजित किए गए, लेकिन व्यावहारिक रूप से उनके विचारों के अनुरूप कोई कार्य किए गए क्या? यह सब जो हुआ, वह भी प्रायोजित कार्यक्रमों की तरह दिखावटी और सतही रहा। यदि, ऐसा नहीं होता तो देश के 500000 से अधिक बुनकरों के सामने आजीविका का संकट क्यों पैदा हुआ होता? इस भीषण वैश्विक महामारी के दौर में करोड़ों लोग इतने पीड़ित और परेशान क्यों हुए होते? महात्मा गांधी के देश में जहां पर्याप्त संसाधन, सरकारों के खरबों के बजट, धर्मार्थ संस्थाओं और अन्यान्य के पास खरबों रुपए की पूंजी तथा हीरे जवाहरात उपलब्ध हैं, करोड़ों लोगों के रोजगार पर संकट क्यों उत्पन्न होता? आज भी करोड़ों लोग बेरोजगार और गरीबी रेखा से नीचे क्यों होते? मोटे तौर पर यह वास्तविकताएं ही गांधीजी के आदर्श की चर्चा करने और उनके धरातल पर क्रियान्वयन के अंतराल को स्पष्ट कर देती हैं।

महात्मा गांधी के विचार इसलिए सदैव प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे व्यवहारिक हैं, और इस वैश्विक और राष्ट्रीय महासंकट के दौर में गांधीजनों द्वारा इसीलिए गांधीजी की महत्ता और महत्व को रेखांकित किया जा रहा है। लेकिन, व्यक्तिगत रूप से गांधी जी के कार्यों को बढ़ाने के लिए सामने आने का जोखिम कोई मोल नहीं लेना चाहता। गांधी जी के नाम पर स्थापित ट्रस्ट और संस्थाएं उनके पास उपलब्ध जमीन, खेती, संसाधन, संगठन का प्रबंध करने, उन पर अपना स्वामित्व बनाए रखने आदि कार्यों में व्यस्त हैं। चंद गिने-चुने सिद्ध पुरुषों के पास अनेकों ट्रस्टों की जिम्मेदारियां है, केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के पास बहुराष्ट्रीय कंपनियों और पूंजीवादी उपक्रमों के साथ सांठगांठ करके बड़े-बड़े प्रोजेक्टों के द्वारा शहरी उच्च और मध्यम आय वर्ग के मतदाताओं को संतुष्ट करने और विकास का दावा करने के कार्य हैं। फिर गांधी जी के द्वारा बताए गए मार्ग पर चलने के लिए जो कसौटी आवश्यक है, उस पर चलकर कठिन मार्ग पर आधारित उत्पादन पद्धति, संसाधनों के विकेंद्रीकरण, न्यास धारिता के उत्पादन और वितरण के कार्यों का क्रियान्वयन कैसे होगा? संयम, विलासिता और आडंबरपूर्ण जीवन शैली का त्याग कैसे होगा? निस्संदेह, गांधीजी के आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में अपनाने वाले व्यक्तियों की संख्या भी काफी है। अहमदाबाद स्थित गुजरात विद्यापीठ में अध्यापन कार्य के दौरान कर्तव्यनिष्ठ गांधीवादी विद्यार्थियों द्वारा मुझसे प्रश्न किया गया कि अंततः देश में गांधीवादी व्यवस्था कैसे स्थापित हो सकती है? सहज रूप से इसका उत्तर जो मुझे सूझा, वह यह था कि, देश भर में ऐसे 1000 गुजरात विद्यापीठ स्थापित करके। आशय यह है कि पूंजीवादी व्यवस्था के इस दौर में और उससे उत्पन्न खतरों से बचने के लिए जीवन शैली, सोच और व्यवहार में गांधीवादी आचार-विचार को अपनाए जाने के लिए देश भर में गुजरात विद्यापीठ जैसी शिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता है। यहां से उच्च शिक्षण प्राप्त विद्यार्थी, प्राध्यापक और एक पूर्व कुलपति तक गुजरात के सुदूर आदिवासी क्षेत्रों में गांधी जी के विचारों पर आधारित समाज और अर्थव्यवस्था के निर्माण के द्वारा लाखों लोगों के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए कार्य कर रहे हैं। महात्मा गांधी के देश को समझ में आ जाना चाहिए कि 140 करोड़ की विशाल जनसंख्या और विशाल संसाधनों वाले देश में स्वदेशी टेक्नोलॉजी, गांधी जी के उपायों और 'विकास मॉडल' को अपना कर सारी समस्याओं का निराकरण करना, आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था बनाना, विश्व गुरु की पदवी पाना और महाशक्ति बनना सब कुछ संभव है। पर क्या यह देश, सरकारें और जनता 'गांधी मार्ग' को अपनाएंगे? ❑

राजनीति में धर्म
आशंकाएं और आकांक्षाएं

❑ अरुण तिवारी

एक दिन मैने अपनी बेटी से उसकी सबसे अच्छी सहपाठिन का नाम पूछा, तो उसका जवाब था - ''नूर। वह मुसलमान है।'' मैं सन्न रह गया। नूर स्कूली वर्दी में आती है। उसके शरीर पर मुसलमान होने का कोई निशान नहीं है। फिर मेरी बेटी को किसने बताया कि नूर मुसलमान है। मैंने तो कभी नहीं बताया। क्या मुसलमान होना ही नूर की पहचान है?

दूसरी घटना तब घटी, जब मेरे स्कूल के दिनों के साथी अमरजीत पहली बार मेरी बेटी से मिले। उन्होंने अपने बारे में पूछा कि वह कौन हैं। बेटी ने तपाक से उत्तर दिया - सिख।

अमरजीत हतप्रभ थे और मैं शर्मिंदा। हम दोनों ने अपेक्षा की थी कि उसका जवाब चाचू या अंकल होगा। उन्होंने पूछा कि उसे किसने बताया। वह बोली-''आपके सिर पर पगड़ी है न; इसने।''

हालांकि दोनो बार बिटिया ने जवाब सहज भाव से ही दिया था, किंतु इसने मुझे दुखी किया कि उसमें भिन्नता के बीज पड़ गये हैं। मुझे तो आजकल सांप्रदायिक सद्भाव के नारे लगाते भी संकोच होता है। ये नारे भी तो हमारा परिचय एक इंसान या भारतीय के रूप में न कराकर, हिंदू-मुसलमान-सिख-ईसाई के तौर पर कराते हैं। कभी-कभी लगता है कि पाठ्यक्रमों से कौमी भिन्नता के निशानों का परिचय कराने वाले पाठों को हटा देना चाहिए। खैर, मेरी चिंता और जिज्ञासा तब और ज्यादा बढ़ जाती है, जब मुझे मेरे कई हिंदू करीबियों की दिलचस्पी, हिंदुओं का गौरव गान करने से ज्यादा, मुसलमानों और ईसाइयों को खतरनाक सिद्ध करने में दिखती हैं।

मेरा गांव अमेठी के जिस इलाके में है, वहां मुसलिमों की आबादी कम नहीं है। पीढ़ियों से इलाके का कपड़ा सिलने वाले, हमारे सार्वजनिक उत्सवों और शादियों में गोला-पटाखे दगाने वाले और मंदिरों के बाहर फूल माला बेचने वाली मालिनें... सब मुसलमान हैं। सब से हमारा सुख-दुख का रिश्ता है; आना-जाना है; बावजूद इसके बाबरी मसजिद विध्वंस के बाद अपनी पहचान के निशानों के लिए उनकी बेचैनी देखकर भी मैं चिंतित होता हूं।

हिंदूवादी संगठन भी भारत को हिंदू राष्ट्रवाद के डंडे से हांकने की कोशिश में इतनी शिद्दत के साथ लगे हैं, मानो हिंदू राष्ट्र रहते हुए नेपाल ने कुदरत और दुनिया की सारी नियामतें पा ली थीं या फिर हिंदू राष्ट्र रहते हुए नेपाल में आपसी वैमनस्य के कारण कोई आंदोलन ही नहीं हुआ। आखिर वह क्या है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनाकर नेपाल ने खोया और हिंदू राष्ट्र होते हुए उसने हासिल कर लिया था? गौर कीजिए कि भारत में भाजपा सरकार आने के बाद से नेपाल को हिंदू राष्ट्र बनाने की मांग को फिर हवा देने की कोशिश की गई। सफल नहीं होने पर नाराजगी जताई गई। नतीजा भी सामने ही है। पिछले मात्र पांच वर्षों के छोटे से राजनैतिक कालखण्ड में भारत ने नेपाल के बड़े भाई का पद और हक दोनो खो दिया है। इस बीच एक समय ऐसा आया कि नेपाल ने भारतीय चैनलों की एक बडी संख्या का नेपाल में प्रसारण रोक दिया। इसे भारत के प्रति किस भाव की श्रेणी में रखेंगे?

दूसरी तरफ दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि इतने वर्षों बाद भी पाकिस्तान और भारत आपस में क्रमशः एक मुसलमान और हिंदू राष्ट्र की तरह ही व्यवहार कर रहे हैं। जर्मनी, रूस समेत दुनिया के कई देशों का विभाजन हुआ, किंतु विभाजन के पश्चात् सरकारों में ऐसा आपसी सांप्रदायिक रंज किन्हीं और दो देशों में नहीं है। जिन्ना ने मृत्यु पूर्व भारत-पाकिस्तान के एक हो जाने की इच्छा जाहिर की थी। दोनों मुल्कों के कितने लोगों के मन में आज भी है कि दोनों मुल्कों के शासन, सांप्रदायिक कट्टरता त्यागें। कश्मीर के मसले का हिंदू-मुसलमान के तरफदार होकर हल करने की जिद्द छोड़ें। एक दोस्त की तरह रहें। अपना ध्यान, एक-दूसरे का नुकसान करने के बजाय, तरक्की में सहयोग के लिए लगायें। इन्हीं तमाम आकांक्षाओं और आशंकाओं ने मुझे हिंदू-मुसलिम कट्टरता, मिथक और यथार्थ को जानने को प्रेरित किया। जो जाना, वह लिख रहा हूं।

एक आइना, भारतीय राजनीति

आमजन के लिए मजहब आस्था का, धार्मिक-राजतांत्रिक सत्ता के लिए वर्चस्व का, मीडिया के लिए रेटिंग व पूर्वाग्रह का और वर्तमान भारतीय नेताओं के लिए वोट की बंदरबांट का विषय है। हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाइयों के बीच कुछ सांस्कृतिक-वैचारिक भिन्नता हो सकती है। ऐसी भिन्नता तो दक्षिणपंथी, वामपंथी, समाजवादी और गांधीवादियों के बीच भी है। क्या वे एक-दूसरे के लिए असहनीय हैं? नहीं, तो क्या दुनिया का कोई मजहब ऐसा भी है, जो दूसरे मजहब को सहन न करने की शिक्षा देता हो? नहीं, तो फिर निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि मजहबी असहिष्णुता दर्शाने के कारण कुछ और हैं। वैचारिक-सांस्कृतिक भिन्नता में छोटे-मोटे द्वंद कोई खास बात नहीं, किंतु एक-दूसरे को न सह पाने का संदेश देना, निश्चित ही मजहब के गैरमजहबी इस्तेमाल के कारण ही है।

अतीत पर गौर कीजिए कि यदि राजनीतिक इस्तेमाल की तमन्ना न होती, तो सोमनाथ मंदिर से लेकर बाबरी मसजिद तक को ध्वस्त करने के राजनीतिक प्रयास न होते। जमशेदपुर, मुंबई, सूरत, अहमदाबाद, भोपाल, कानपुर, मुरादाबाद, अलीगढ़, आगरा, मुजफ्फरनगर और मेरठ के हाशिमपुरा, मलियाना आदि जगहों पर हुए शर्मनाक दंगे न होते; एक वक्त में गुलाम अली की आवाज सुनने से शिवसेना को ऐतराज न होता; प्रतिक्रिया में दिल्ली के मुख्यमंत्री, गुलाम अली

को दिल्ली में मंच देने का वक्तव्य न देते। बात राजनीतिक न होकर देशभक्ति की होती, तो पाकिस्तान और बांग्लादेश से एक-एक इंच ज़मीन वापस लेने का घोष करने वाले, भारत की लाखों वर्ग किलोमीटर ज़मीन दबाये बैठे चीन को सबसे पहले आंखें दिखाते। यदि ऐसा न होता, तो बांग्लादेश से भारत आये भिन्न-धर्मी शरणार्थियों की गिनती सिर्फ मुसलमान के रूप में नहीं होती। नित नई पाबंदियों तथा तालिबानी, फियादिन व जिहादी हमलों के नये वैश्विक चित्रों का संदेश क्या है?

जंग-ए-आज़ादी का दर्द

यह गौर करने की बात है कि जब-जब खुद को मजहबों के प्रतिनिधि कहने वाले राजनैतिक दलों या संगठनों द्वारा आपसी प्रेम साझा करने की कोशिश हुई, उसके बाद अक्सर माहौल बिगाड़ने की कोशिशें भी हुईं; नतीजे में साप्रदायिक ताकतें और ताकतवर होकर उभरीं।

याद कीजिए वर्ष 1905; जब बिना किसी तरह का मजहबी ख्याल मन में लाये भारत के हिंदू और मुसलमान एक कौम, एक सांस होकर जंग-ए-आज़ादी में जुटे थे, तब लॉर्ड कर्जन, मजहबी आधार पर बंगाल के बंटवारे का प्रस्ताव ले आया। 1906 में मुसलिमों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की मांग को मंजूर कर लॉर्ड मिंटो ने सांप्रदायिक विभेद की अपनी कोशिश को आगे बढ़ाना जारी रखा। मुसलिमों के लिए अलग सीटों के आरक्षण को क्या कहेंगे? इन सीटों पर कांग्रेस और मुसलिम लीग के एक साथ चुनाव लड़ने के असफल प्रयास के नतीजे, इन सीटों पर कांग्रेस को महज एक सीट मिलने और दंगे के रूप में सामने आये। 1927-28 में कांग्रेस द्वारा मुसलिम लीग की मांगों को पहले मानना और फिर नेहरू रिपोर्ट के जरिए पलट जाना, तीन-तीन गोलमेज सम्मेलनों का विफल रहना आदि तो सिर्फ कुछ नजीरें भर हैं।

आज़ादी की जंग का काला हिस्सा यह है कि इस दौरान की ब्रितानी और हिंदुस्तानी राजनीति पूरी की पूरी मजहबी पक्ष-विपक्ष में खड़े होकर गढ़ी गई। वह चाहे मुसलिम लीग हो या फिर जनसंघ, एक संप्रदाय विशेष के नाम पर राजनीति करना, संप्रदाय का राजनैतिक इस्तेमाल ही है। लाला लाजपतराय ने लाहौर के अखबार ट्रिब्यून में तीन लेखों की श्रृंखला लिखकर, पंजाब और बंगाल की मांग पेश कर दी। उन्होने तो यहां तक मान लिया था कि अब हिंदू और मुसलमान एक साथ नहीं रह सकते।

दंगे गवाह

भारत में दंगों का इतिहास देखिए। मजहबी आधार पर किसी मुल्क का विभाजन और फिर दंगे! आखिर ऐसा भी कहीं हुआ है? वर्ष 1947 में भारत में हुआ। 1961 में उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि प्रदेशों में प्रगतिशील तत्वों द्वारा एकजुट विपक्ष के रूप में उभरने की प्रक्रिया

चल रही थी। दूसरी ओर केरल में कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और मुसलिम लीग ने चुनाव साझा कर लिया। 1961 और 1964 में फिर बड़ा सांप्रदायिक दंगा करा दिया गया।

नतीजा!

दंगे की प्रतिक्रिया में मजलिस मुसलिम मुसाबरात का गठन हुआ। 1969 में तो जैसे सांप्रदायिक दंगों की बाढ़ ही आ गई। रांची, जमशेदपुर, अहमदाबाद, जलगांव आदि में इंसानियत शर्मसार हुई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनसंघ पर उंगली उठी; नतीजे में मजलिस मुसलिम मुसाबरात का विस्तार हुआ और 1972 के चुनाव में भारतीय जनसंघ एक शक्तिशाली राजनैतिक दल के रूप में उभरा।

कांग्रेस

1977 के बाद क्या हुआ ? वर्ष 1977 में चुनाव हारने के बाद कांग्रेस की कट्टरता, गुंडागर्दी और आपराधिक शक्ति के तौर पर सामने आई। उसके 'गरीबी हटाओ' के नारे और समाजवादी चेहरे का भ्रम टूटा, तो इंदिरा गांधी ने भी हिंदू कार्ड को अपनी ताकत बनाने की कोशिश की। शेख अबदुल्ला की मृत्यु के बाद जम्मू-कश्मीर घाटी में हुए चुनावों में उन्होंने उग्र हिंदू एजेंडे के साथ चुनाव लड़ा। नतीजा? कश्मीर में फारूक अबदुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस जीती, किंतु हिंदू वोट वाली जम्मू घाटी में कांग्रेस (आई) ने सबका सफाया कर दिया। जनसंघ को भी एक सीट नहीं मिली। इसी तरह पंजाब के अकाली दल को निपटाने के लिए कांग्रेस ने जरनैल सिंह भिंडरावाले के आतंकवाद को फलने-फूलने दिया। फिर एकता और अखंडता के नारे को उछाल कर सिखों को राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए खतरे के रूप में पेश किया गया। हिंदू समाज में व्यापक प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। सोची-समझी रणनीति के तहत् कांग्रेस ने 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' करा दिया और हिंदू मानस को तुष्ट करने का श्रेय लूट लिया। यह बात और है कि हिंदू वोट हथियाने की इस जुगत में इंदिरा गांधी की जान चली गई। इस खेल से गुस्साये दो सिख अंगरक्षकों ने उन्हें मौत के मुंह में पहुंचा दिया। इसका राजनैतिक लाभ राजीव गांधी को मिला।

सत्ता में आते ही उन्होंने हिंदुओं की प्रिय गंगा की सफाई हेतु 'गंगा कार्य योजना' की घोषणा की। स्वामी विवेकानंद के जन्म दिन को 'राष्ट्रीय युवा दिवस' घोषित कर डाला। शाहबानो प्रकरण में मुसलिम समुदाय के सामने समर्पण से हिंदुओं में नकरात्मक प्रतिक्रिया होती दिखी, तो स्वयं राजीव गांधी, उनके आंतरिक सुरक्षा राज्य मंत्री अरूण नेहरू और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री

वीर बहादुर सिंह ने मिलकर राम जन्मभूमि स्थल का ताला खुलवा कर, कट्टरवादियों के लिए एक नया जिन्न खड़ा कर दिया।

गौर कीजिए कि इसी के बाद रामजन्म भूमि मुक्ति आंदोलन खड़ा हुआ। इसी समय दूरदर्शन पर रामानंद सागर रचित 'रामायण' धारावाहिक शुरू हुआ। इसी बीच 1989 के चुनाव आ गये और राजीव गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने हिंदूवादी संगठनों के साथ मिलकर बाबरी मसजिद के पास राम जन्मभूमि मंदिर का शिलान्यास करा दिया। किंतु तब तक जनसंघ से ज्यादा आक्रामक तेवर वाली भारतीय जनता पार्टी का अवतार हो चुका था। कांग्रेस के धर्मोन्मादी रुख से वामपंथी नाराज थे। लिहाजा, कांग्रेस के हाथ से बाजी निकल गई।

जाति-धर्म की राजनीति का बढ़ता घालमेल

1989 में विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाला राष्ट्रीय मोर्चा, भाजपा और वामपंथी दलों के समर्थन से सरकार बनाने में सफल रहा। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिश पर अमल पर फैसला किया, तो अगड़ों की खिलाफ प्रतिक्रिया को देखते हुए भाजपा ने समर्थन खींच लिया; सरकार गिरा दी। जनता ने दंगों का दर्द झेला। जनता दल भी बंट गया। किंतु जातिवाद के नये जिन्न ने पिछड़ी-दलित जातियों, जनजातियों और अल्पसंख्यकों को नई जगह दी। लिहाजा, हिंदू कट्टरता को फलने-फूलने के पर्याप्त कारण विद्यमान थे। नतीजे में जहां एक ओर जाति व अल्पसंख्यक गठजोड़ की राजनीति ने मुलायम सिंह, कांशीराम, कर्पूरी ठाकुर, लालू यादव, शरद यादव, नीतीश कुमार, रामविलास पासवान के अलावा कई मुसलिम दलों और नेताओं को भी जन्म दिया, वहीं प्रतिक्रिया में साध्वी उमा भारती, साध्वी ऋतम्भरा, योगी आदित्यनाथ जैसी हिंदू चोला पहनने वाली कई शख्सियतें राजनैतिक हो गईं। इसी संघ-भाजपा और विश्व हिंदू परिषद ने बाद में केन्द्र में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव और प्रदेश में तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह से सांठगांठ कर बाबरी मसजिद ढहा दी। फिर सांप्रदायिक सद्भाव टूटा। भारत ने फिर मार-काट का दर्द झेला। इससे जहां भारतीय जनता पार्टी एक ओर पूरी तरह कट्टर हिंदू पार्टी के रूप में उभरी, वहीं एक जिम्मेदार पार्टी के तौर पर भाजपा की छवि को गहरा धक्का भी लगा।

उदारवाद और कट्टरता का कॉकटेल

तब भाजपा ने अटल बिहारी बाजपेई के उदारवादी चेहरे और आडवाणी के कट्टरवादी चेहरे के कॉकटेल का प्रयोग करने में ही भलाई समझी। अटल प्रधानमंत्री और आडवाणी गृहमंत्री बने। गौर कीजिए कि कॉकटेल के इसी सबक से सीखते हुए वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में भाजपा किसी एक छवि के साथ आगे आने से बची। इस चुनाव में भाजपा की पूरी छवि, नरेन्द्र मोदी के एकमात्र आइने में उतार दी गई। मोदी की कई छवियां गढ़ी गईं। एक छवि, गुजरात के विकास मॉडल को सामने रखकर उकेरी गई विकास पुरुष की छवि थी। दूसरी छवि, पिछड़े वर्ग के जातिवादी मोदी की थी। तीसरी छवि, 'मैं आया नहीं हूं, मुझे गंगा मां ने बुलाया है' तथा रात्रि में योग-ध्यान करने वाले, मां का आशीष लेने वाले सनातनी हिंदू की थी। चौथी छवि, एक चाय वाले से प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार की ऊंचाई तक पहुँचने वाले निर्णायक, जुझारू, निर्भीक व बेदाग और गरीबी से उठकर आसमान छू लेने वाले नेतृत्व की थी। कांग्रेस के कारपोरेट घोटाले वाले शासनकाल और सोनिया, राहुल तथा मनमोहन सिंह की तुलना में इन चारों छवियों ने बहुस्तरीय असर किया।

मोदी के साथ-साथ भाजपा भी जीती, किंतु हिंदूवाद का कार्ड उसने छोड़ा नहीं। कभी जनगणना में मुसलिमों की आबादी में वृद्धि का आंकड़ा पेश कर, तो कभी साक्षी महाराज, कभी योगी आदित्यनाथ और कभी शंकराचार्य द्वारा साईंबाबा के हिंदू-मुसलमान होने का विवाद उठाकर, कभी गोमांस का निर्यात बंद कर, कभी जैन पर्यूषण पर्व पर बूचड़खाने और मांस बिक्री पर प्रतिबंध लगाकर एजेंडे को मरने नहीं दिया। इसी बीच बिहार चुनाव के बाद अब राम मंदिर और असहिष्णुता को मुद्दा बनाकर पेश किया गया है। राम मंदिर चंदा के जरिए चल रहा अभियान हम सभी के सामने है ही।

पश्चिमीकरण से असुरक्षा और पहचान के निशान

सब जानते हैं कि वैश्विक उदारवाद और डिजिटल उदारवाद के इस दौर में जिला, राज्य या राष्ट्र को एक जाति, संप्रदाय या वर्ग विशेष की संकीर्ण दीवारों में बांधने की कोशिश करना बेमानी है; बावजूद इसके, जातीय असुरक्षा के कारण उपजी कट्टरता के कारण आज कई स्थानों पर उत्तर-पूर्व से लेकर गुजरात तक जातीय आंदोलन हैं, ब्राह्मण-क्षत्रिय महासभाएं हैं, आरक्षण विरोधी अनशन हैं, हिंदू-मुसलिम विरोधी नारे हैं, डीएनए के जुमले हैं और जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान विरोधी नारों को गतिमान रखकर, हिंदू वोट धुव्रीकरण के छिपे एजेंडे हैं। अपनी-अपनी पहचान दिखाने के प्रयास भी कम नहीं हैं।

पहचान के इन निशानों के लिए बेचैनी इसलामी समाज में भी बढ़ी है। पढ़े-लिखे मुसलिम युवाओं में भी दाढ़ी, टोपी और ऊंचे पायजामों का चलन बढ़ा है। हो सकता है कि भारत में बाबरी मसजिद ढहाये जाने के बाद अल्पसंख्यक मन की असुरक्षा ने इस प्रवृति को हवा दी हो, किंतु हकीकत यह है कि पश्चिमी तौर-तरीकों ने हिंदू और मुसलमान दोनों की पारंपरिक जीवन शैली, संस्कार और ज्ञानतंत्र में घुसपैठ कर इन्हें जिस तरह ध्वस्त करना शुरू किया है, उससे उपजी असुरक्षा भी कट्टरता का एक बड़ा कारण है। आयतुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में उभरी ईरानी कट्टरता के दौर को याद कीजिए। शिया-सुन्नी दोनो फिरकों पर पश्चिमीकरण का आघात बराबर है। खासकर, पश्चिमी मुल्कों के खिलाफ तनी मुट्ठियों और आतंकवादी हरकतों को देखिए। ब्रिटिश मुसलमान छात्रों से इस्लामिक स्टेट नामक संगठन द्वारा फिदायिन बनने की अपील करता वीडियो, काबुल में नाटो काफिले पर तालीबनी हमला; सब याद करते जाइये। दुनिया के तमाम इसलामिक मुल्कों में घट रही घटनाओं का समग्रता से विश्लेषण कीजिए; आप गांरटी से पायेंगे कि हिंदू-मुसलिम दोनों की कट्टरता के कारण, भीतरी से ज्यादा बाहरी है।

स्पष्ट है कि मजहबी खेमों में खड़े होकर मुद्दे की खाल खींचने से हल नहीं निकलेगा। निवेदन है कि यदि मजहबी कट्टरता से निजात पानी है, तो बाहरी कारणों से निजात पाने की कोशिश करनी चाहिए। लोकतंत्र में यह संभव है। क्या हम करेंगे? ❑

गतिविधियां एवं समाचार

उत्तर प्रदेश सर्वोदय समाज सम्मेलन सम्पन्न

14-15 फरवरी 2021 को सर्व सेवा संघ, वाराणसी परिसर में उत्तर प्रदेश सर्वोदय समाज का सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में 32 जिलों के करीब 150 लोगों ने भागीदारी की। सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में जलपुरुष राजेन्द्र सिंह ने कहा कि सर्वोदय का मूल विचार प्रकृति-पर्यावरण को नुकसान पहुंचाये बिना मनुष्य, समाज और राष्ट्र का निर्माण करना है। सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष चन्दन पाल ने कहा कि आज भय, घृणा और हिंसा के दौर में लोगों में शांति, सद्भाव, प्रेम और परस्पर सहयोग व विश्वास बनाये रखना हमारा दायित्व है। पूर्व पुलिस अधिकारी और गांधी विचार के अध्येता आर.एन. सिंह ने अन्याय के खिलाफ सत्याग्रह की ऐतिहासिकता और उपादेयता पर विस्तार से चर्चा की और अपने कई अनुभव भी सुनाये। उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष भगवान सिंह ने सम्मेलन में उपस्थित सभी गांधी जनों का स्वागत करते हुए कहा कि व्यक्ति और समाज का निर्माण ही सर्वोदय का मूल उद्देश्य है। गीता का उद्धरण देते हुए उन्होंने कहा कि भारत की संस्कृति समन्वय और संयम की संस्कृति है। सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ गांधीवादी अमरनाथ भाई ने कहा कि सर्वोदय का काम गांव-गांव में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करना है। बिना ग्राम स्वराज्य के स्वावलंबन या प्रकृति व पर्यावरण का संरक्षण संभव नहीं है। सम्मेलन का संचालन अरविन्द सिंह कुशवाहा ने किया।

सम्मेलन के दूसरे दिन 15 फरवरी को 'धरती, पानी और पर्यावरण' विषय पर बोलते हुए राजेन्द्र सिंह ने कहा कि मौसम का मिजाज बदल रहा है, धरती का तापमान बढ़ रहा है और जल स्तर घट रहा है। उन्होंने कहा कि बिना तालाबों और नदियों का संरक्षण किये हमें पानी उपलब्ध नहीं हो सकता है। पर्यावरण के संरक्षण बिना मनुष्य जीवन संभव नहीं है। इसके अलावा सम्मेलन में प्रदीप शुक्ला, राजेन्द्र मिश्र, मुकुल शर्मा, राघवेन्द्र, ईश्वरचन्द, उमाशंकर पांडेय, अभिमन्यु सिंह, के.डी. सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त किये। संचालन पुतुल कुमारी और अध्यक्षता नसीर अहमद ने किया।

सम्मेलन के समापन सत्र में 'सांस्कृतिक विविधता—भारत की विशेषता' विषय पर चर्चा हुई। इस सत्र की अध्यक्षता गांधी स्मारक निधि के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं सर्वोदय समाज के पूर्व संयोजक रामचन्द्र राही ने की। उन्होंने अपने हृदयस्पर्शी संबोधन में कहा कि इस समय गांधीजनों का विशेष दायित्व है कि सांप्रदायिक ताकतों का मुकाबला करें और गांधी के 'सर्वधर्म समभाव' के संदेश को आमजन तक ले जायं। नफरत से नहीं, प्रेम और परस्पर विश्वास व सहयोग से ही समाज का विकास होगा।

सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष चंदन पाल ने कोकराझार (असम) के अपने अनुभवों को साझा किया और बताया कि गांधी विचार के आधार पर परस्पर संवाद और समझ बनाकर मैंने समाज को जोड़ा। इस सत्र का संचालन जागृति राही ने किया। इस सत्र में आर. एस. राय, संजीव सिंह, अखिल मानव, मनोहर मानव, सुरेश सर्वोदयी, विजय पांडेय, सत्येन्द्र तिवारी, डॉ. अरुण कुमार तिवारी, विद्याधर, सुरेश गुप्ता और बिन्दा भाई आदि ने विचार व्यक्त किये। धन्यवाद ज्ञापन अरविन्द अंजुम ने किया।

-स. ज. डेस्क

महात्मा गांधी की पुण्य तिथि पर

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 72वीं पुण्यतिथि के अवसर पर लोकनायक जयप्रकाश नारायण स्मारक संस्थान और 'इप्टा', आरा के तत्वावधान में श्रद्धांजलि सभा और विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया. इस अवसर पर आयोजित गोष्ठी का विषय था 'वर्तमान संदर्भ में मानवीय एकता'. गोष्ठी की अध्क्षता प्रो. रवीन्द्र नाथ राय ने की. विषय प्रवेश और संचालन संस्थान के महासचिव सुशील कुमार ने किया. सुशील कुमार ने कहा कि गांधी जी को महात्मा की उपाधि गरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने दी थी, लेकिन प्रारंभ में उनकी गांधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन संबंधी विचारों से सहमति नहीं थी. गुरुदेव मानवीयता आधारित जनांदोलन के पक्षधर थे और राष्ट्रवादी विचारों के उग्र होने के खतरे से सावधान रहने की बात करते थे. लेकिन 1919 में जलियांवाला बाग के नरसंहार के बाद से वे महात्मा गांधी के विचारों के करीब होते गये. वर्तमान संदर्भ में मानवीय एकता के विचारों को राष्ट्रीय एकता से ऊपर रखकर समाज निर्माण की आवश्यकता है. वर्तमान किसान आन्दोलन के विरुद्ध वर्तमान सरकार का अंधराष्ट्रवादी दृष्टिकोण अमानवीय है.

वरिष्ठ साहित्यकार जितेन्द्र कुमार ने कहा कि राष्ट्रीय एकता के नाम पर स्टेन स्वामी और बरबरा राव जैसे वयोवृद्ध और वरिष्ठ साहित्यकर्मी और सामाजकर्मियों को जेल में यातनाएं देना केन्द्र सरकार के अमानवीय चरित्र को उजागर करता है. डॉ. नीरज सिंह ने कहा कि मानवीयता का संदर्भ अंतर्राष्ट्रीयता से जुड़ता है. भौगोलिक, जातीय, धार्मिक आदि विभाजनों के आधार पर मानव समाज को विखंडित करके देखने से मानवीय एकता खंडित होती है. शिक्षक नीलांबुज ने कहा कि वर्तमान किसान आन्दोलन मानवीयता को जोड़ने वाला है और सरकार का रवैया अमानवीय है. भास्कर मिश्रा ने कहा कि धर्म के आधार पर उग्र राष्ट्रीयता को उकसाना खतरनाक है. समाजकर्मी अशोक मानव ने बुद्धिजीवियों से अनुरोध किया कि नकारात्मक तत्वों द्वारा सोशल मीडिया पर फैलाये जा रहे मानवता विरोधी प्रचारों का सही जवाब देने के लिए सरल साहित्य का निर्माण कर सोशल मीडिया पर प्रसारित करें. इप्टा के सचिव अंजनी शर्मा ने कहा कि दिल्ली के सिंघू बॉर्डर और गाजीपुर बॉर्डर पर बैठे सत्याग्रही किसानों पर सरकार के इशारे पर आक्रमण निन्दनीय है. किसान आन्दोलन आज के संदर्भ में मानवीय एकता का सर्वोत्तम उदाहरण है. इप्टा की छात्रा अंशु कुमारी मिश्रा ने महात्मा गांधी के सत्याग्रही जीवन पर प्रकाश डाला.

अध्यक्षीय भाषण में प्रो. रवीन्द्र नाथ राय ने कहा कि महात्मा गांधी की हत्या के लिए जिम्मेवार विचारधारा वालों से सावधान रहने की जरूरत है. महात्मा गांधी के हत्यारे का मंदिर बनाना और महिमामंडित करना अत्यंत ही निन्दनीय और चिंताजनक है. वार्ड पार्षद शमीम आरवी ने महाराष्ट्र के यवतमाल जिले में सामाजिक कार्यकर्ता ज्ञानेन्द्र पर असमाजिक तत्वों द्वारा किये गये जानलेवा हमले के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव पेश किया, जिसे सर्वसम्मति से पारित किया गया. गोष्ठी में प्रह्लाद सिंह, प्रो. सत्यनारायण सिंह, सरफराज अहमद एवं हरेन्द्र बिहारी ने भी अपने विचार व्यक्त किये.

गोष्ठी का समापन इप्टा के कलाकारों द्वारा गाये गये गीतों से हुआ. धन्यवाद ज्ञापन श्रीधर शर्मा ने किया.उक्त अवसर पर अशोक यादव, सुनील चौधरी, मनोज सिंह, जनार्दन मिश्रा, पंकज भट्ट, शमशाद प्रेम, अरुण कुमार, डी. राजन जैसे कई संस्कृतिकर्मी उपस्थित रहे।

-श्रीधर शर्मा

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2023
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

केशव शरण की कविताएं

सोने की चिड़ियां
सोने की चिड़ियां
भूखी हैं,
दाने नहीं हैं
देश के पास

सोने की चिड़ियों का
शिकार हो रहा है जमकर,

जगह ख़ाली हो रही है
जैसे-जैसे,
डाल-डाल पर,
दिखायी दे रहे हैं उल्लू

जयकार और निराशा
एक भवन था,
जो बना नहीं था
सिर्फ शिलान्यासित हुआ था
शिलान्यास जिसने किया,
उसने उसे लोकतंत्र का मंदिर कहा
एक नहीं, अनेक बार
जिस पर हुई भारी जयकार

लेकिन निराश भी कम नहीं हुए लोग,
जो सुनना चाहते थे बस एक बार
जम्हूरियत की मस्जिद
चर्च आफ डेमोक्रेसी
लोकशाही दा गुरुद्वारा
और पगोड़ा प्रजातंत्र का!

वार्ता
अधूरी रह जाती है
हमारी वार्ता,
चाय दो बार चले
या चार बार,

सुबह से दोपहर हो जाये
या दोपहर से शाम,

अजब बात
हमारी हर मुलाक़ात
वार्ता पूरी करने के नाम!

सिकन्दर
सिकन्दर
जीतता हुआ
आगे बढ़ता जा रहा है,
अभी कई प्रदेश बाक़ी हैं,
उसका ध्यान
सिर्फ अपनी आगामी जीतों पर है।

सिकन्दर
मुड़कर नहीं देख रहा है,
उसके द्वारा जीते हुए प्रदेशों में
प्रजा का क्या हाल है!
मचा वहां
क्या बवाल है!

जानता है सिकन्दर,
अगर उसने मुड़कर देखा,
पत्थर हो जायेगा वह

इशारा
ज़ालिमों को
तमाम बहाने आते हैं
ज़ुल्मों के,
जो ज़ुल्मों को ज़रूरी बताते हैं
और सताये जाने वालों के लिए हितकारी

ज़ालिमों की तरफ़ से
करुणा और प्रेम का संदेश देने वालों का
संगठन है भारी,
जो सताये जाने वालों को समझाते हैं
कि तुम्हारे ज़ालिम कितने अच्छे हैं और दयावान
और तुम ख़ुद
कितने बड़े त्यागी, तपस्वी और
देशभक्त हो महान
कि तुमको कोई बहका नहीं सकता
ऐसा करने वालों के लिए कारा है,

यह मानवाधिकारवादियों की तरफ़
इशारा है।

ज़मानत- 1
ज़मानत नहीं हो रही है
वे अभी तक जेल में बंद हैं,
जबकि उन्होंने एक शीशा नहीं तोड़ा,
एक गमला नहीं फोड़ा,
वे पाये गये थे केवल
यह कहते हुए
कि ये काले अनुबंध हैं,
इन्हें वापस लो
इन्हें लाने की क्या ज़रूरत पड़ी थी!

गुनाह उनका बस यह था कि
वे दूसरों की तरह चुप नहीं रह सकते थे,
वे दूसरों की तरह दबी ज़ुबान में नहीं बोल
सकते थे,
उनके तर्क तीखे थे,
उनकी आवाज़ कड़ी थी।

ज़मानत- 2
एक न एक दिन
ज़मानत होगी,
वे बाहर आयेंगे,
नया सूरज उनका इंतज़ार कर रहा होगा
और बहार अगवानी।

वे चोर-चकारे थोड़े हैं,
वे गुंडे-हत्यारे थोड़े हैं,
उन्होंने जनता के हक़ की बात की है
और ना-हक़
अंदर हैं।

इंतज़ार करें
गुनाह वे करेंगे,
गुनाहगार हमें कहेंगे।
झूठी प्रशंसा वे करेंगे,
ख़ुद की
और हमें कहेंगे
अंध विरोधी।

वे किसी को लगने नहीं देंगे
अपने आगे हिंदुस्तान में,
जब तक उन्हें उखाड़कर फेंक न दे
इतिहास कूड़ेदान में।

इंतज़ार करें!
समय बदलता है, बदलेगा
जैसे यह दिन आया है,
वैसे वह दिन भी आयेगा। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार